RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 55 अंक : 11 कुल पृष्ठ : 36 4 नवम्बर, 2018

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

संघ दीप से जलकर हम सब दीप लड़ी बन जावें,
भाव कर्म को एक बनाकर व्यक्तिवाद बिसरावें,
हम ऐसा संघ बनावें।

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान

फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़

आजाद सिंह राठौड़

सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड

हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 नवम्बर, 2018

वर्ष : 55 अंक-11

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
❍ धर्म और शिक्षा	✍ श्री बी.एस. चन्देल	07
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	09
❍ प्रेरक कथानक	✍ संकलित	13
❍ असतो मा सद्गमय	✍ स्वामी श्री यतीश्वरानन्द	14
❍ वीरमदे सोनगरा	✍ श्री गोविन्दसिंह डाँवरा	18
❍ ध्यान योग की श्रेष्ठता	✍ स्वामी वेदानन्द सरस्वती	21
❍ मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि	✍ श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र'	25
❍ विचार-सरिता (सप्तत्रिंशत् लहरी)	✍ श्री विचारक	27
❍ हम भाग्यशालियों में श्रेष्ठ	✍ श्री अजीतसिंह कुणघेर	30
❍ अपनी बात	✍	31

समाचार संक्षेप

पू. आयुवानसिंह जी की जयन्ती :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के द्वितीय संघप्रमुख पू. आयुवानसिंहजी की जयन्ती 17 अक्टूबर को विभिन्न स्थानों पर मनाई गई। श्री क्षत्रिय युवक संघ की सभी शाखाओं में इस अवसर पर कार्यक्रम आयोजित हुए। इसी दिन जहाँ शिविरों का आयोजन था, वहाँ शिविरों में भी जयन्ती मनाई गई। संघ के सभी कार्यालयों में भी जयन्ती कार्यक्रम आयोजित किए गए। संघशक्ति कार्यालय में प्रात:कालीन शाखा में जयन्ती मनाई गई। पूज्यश्री के कर्मठ जीवन का वर्णन किया गया। विपरीत परिस्थितियों में भी संघर्ष की उनकी क्षमता सभी के लिये प्रेरणादायी है। भूस्वामी आंदोलन के माध्यम से अन्यायपूर्ण कार्रवाई के विरुद्ध संघर्ष करना उन्होंने सिखाया। आंदोलन पूर्णतया अहिंसक था जो लोगों के लिये आश्चर्य का विषय था। राजनीति में भी दल के संगठन को सुदृढ़ खड़ा करने की क्षमता भी उन्होंने प्रदर्शित की। आयु बहुत कम पाई जिससे उनकी क्षमताओं का पूरा लाभ समाज को नहीं मिल सका।

शिविर :

माह अक्टूबर, 2018 में भी विभिन्न स्थानों पर शिविर सम्पन्न होते रहे। इस माह में कुल 28 शिविर सम्पन्न हुए जिनमें से चार शिविर बालिकाओं के लिये थे। चारों शिविर प्राथमिक स्तर के थे। बालकों के शिविरों में 6 शिविर माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर थे शेष 18 शिविर प्राथमिक शिविर थे। सामान्यतया दो प्राथमिक शिविर कर लेने के बाद माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर में आने की पात्रता बनती है। इस वर्ष प्राथमिक शिविरों की संख्या बढी है अत: नए शिविरार्थियों को माध्यमिक शिविर में सम्मिलित होने की पात्रता प्राप्त करने का खूब अवसर मिला। कुछ अछूते क्षेत्रों में भी शिविरों ने दस्तक दी है।

संघप्रमुखश्री का प्रवास :

स्वास्थ्य की बाधाओं के बावजूद संघप्रमुख श्री बार-बार प्रवास पर रहते हैं। सितम्बर माह में गुजरात, जोधपुर, शेखाला, बैंगलोर, फरीदाबाद, दिल्ली की यात्राएँ रही थी। आराम करने की सलाह के विपरीत ये यात्राएँ रही। यात्राएँ अक्टूबर माह में भी रुक नहीं पाई। अजमेर, जोधपुर, अमृतसर, बाड़मेर, जूना, अहमदाबाद, कानोड़ आदि स्थानों की यात्रा अक्टूबर माह में रही। कुछ जगह कोई कार्यक्रम आयोजित था, कुछ जगह शिविरों की देखरेख कारण रहा तो फरीदाबाद में स्वामी अड़गड़ानन्दजी के सान्निध्य हेतु यात्रा रही।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता या स्वच्छंदता :

मनुष्य समाज का अंग है। समाज से अभिन्न है। वह कर्म करने के लिये स्वतंत्र है पर उसकी कोई गतिविधि यदि समाज व्यवस्था के विरुद्ध है तो यह स्वतंत्रता नहीं रही, स्वच्छन्दता बन गई। मेरे बोलने से भी यदि किसी की नींद में दखल होता है, तो मैं न बोलूं-यह भाव है हमारी संस्कृति का। मैं स्वतंत्र तो हूँ लेकिन बोलकर अगर किसी की नींद खराब कर रहा हूँ तो यह स्वतंत्रता नहीं रही, स्वच्छन्दता बन गई। ऐसी छोटी-छोटी बातों से अपने आपको नियंत्रण रेखा में रखकर समाज व्यवस्था को सुचारू सुव्यवस्थित व सुदृढ़ बनाए रखने का हम भारतीयों का स्वभाव रहा है। परन्तु अब पाश्चात्यों की नकल में हमने स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता मान लिया है। हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समलैंगिक सम्बन्धों को मान्यता प्रदान करना तथा स्वेच्छा से महिला या पुरुष विवाहेत्तर सम्बन्ध बनाते हैं तो उसे अपराध न मानने का भी फैसला संविधान में प्रदत्त व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संदर्भ में दिया है, वह समाज व्यवस्था पर कुठाराघात ही सिद्ध होगा। हमारी आदर्श व्यवस्था के किसी बिन्दू पर कोई जोर देकर वक्तव्य दे तो चारों ओर से विरोध के स्वर उठ खड़े होते हैं। परन्तु कुकर्मों की ओर समाज को प्रोत्साहित करने वाले ऐसे विषय पर कोई मुखर नहीं हो रहा है। कैसी विडम्बना की स्थिति हमारी बन गई है।

चलता रहे मेरा संघ

(12 मई, 2018 को भारतीय ग्राम्य आलोकायन आश्रम (जिला बाड़मेर) में उच्च प्रशिक्षण शिविर में सम्मिलित शिविरार्थियों के लिये संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी द्वारा प्रभात संदेश)

आदिकाल से समस्त संसार में सभ्य जातियों ने इस बात की खोज करनी प्रारम्भ कर दी थी कि सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ? किसने किया या किसी ने नहीं किया, अपने आप हुआ। इस संबंध में अलग-अलग मान्यताएँ हैं। जिसको अंग्रेजी में हम लोग मॉयथोलॉजी कहते हैं, वह सब विश्वास पर टिकी हुई है। हम जो मानते हैं वह हमने माना है और इसीलिए सबकी मान्यताएँ भिन्न-भिन्न हैं। कुछ लोगों का मानना है कि इस सृष्टि का कोई सृष्टा है, कोई परम सत्ता है जिसने इस संसार को बनाया है। जिसने पृथ्वी को बनाया है, जल को बनाया है, वायु को बनाया है, अग्नि को बनाया है, आकाश को बनाया है, पहाड़ों को बनाया है, नदियों को बनाया है सागर को बनाया है। कोई एक ऐसा सृजनहार है जिसने यह सब बनाया है। संसार के कुछ लोगों की मान्यताएँ हैं कि कोई इस प्रकार की सत्ता नहीं है, यह अपने आप ही बना है। हमारी भारतवर्ष की मान्यताएँ परम सत्ता में विश्वास करती हैं। हमारी मान्यता ही हमारी संस्कृति बनी है। अपने आप कुछ बनने की बात का बड़ा लम्बा विषय है, कि पहले क्या बना है? बाद में क्या बना है?

हम सारे संसार की बात करते-करते अब मनुष्य जीवन पर बात करेंगे। यह मनुष्य शरीर, 84 लाख योनियाँ जो हमारी मान्यताओं के अनुसार हैं, अर्थात् 84 लाख प्रकार के प्राणी हैं, उनमें से एक प्राणी मनुष्य है। यह भी माना है कि प्राणी तो वह है जिसमें प्राण है-पेड़ में, पौधों में, वनस्पति में और यहाँ तक कि सागर में, हवाओं में सबमें प्राण है। जैसा आपने कल विचार किया था कि कण-कण में भगवान हैं, तो सब जगह भगवान है, वह सभी में समाया हुआ है। हमारी संरचना कैसे बनी? हम लोग इस बात को मानते हैं कि 84 लाख योनियों में क्रमशः उत्तरोतर से निम्न श्रेणियाँ हैं। जो बिल्कुल हिल नहीं सकती, उनको हम जड़ कहते हैं। हमको यह दिखाई देता है कि वे संसार से कुछ लेते नहीं और संसार को कुछ देते नहीं। उनसे श्रेष्ठ वनस्पति है, पेड़ है, जो धरती से पानी लेते हैं, वायु लेते हैं, गरमी से पनपते हैं तो उनकी भी जिम्मेदारी है और वे हमको शीतलता प्रदान करते हैं। आँखों को सुहाने वाला रंग देते हैं। वनस्पति हमारे लिये अन्न खाने के लिये देती है। तो जो संसार से लेता है, वह देता भी है। और जो अधिक देता है वो श्रेष्ठ होना चाहिए। फिर यह पशु-पक्षी हैं, घूम फिर सकते हैं। अपनी इच्छाओं के लिये दौड़ भाग सकते हैं। पूर्ति के लिये संसार से बहुत कुछ लेते हैं। तो ये भी पशु भी संसार को बहुत कुछ देते हैं। चींटी से लेकर शेर तक, हाथी तक, इस संसार से लेते हैं और हमको देते हैं। इन सबके बाद में यदि हम मानें मनुष्य शरीर को, तो इस पर थोड़ा विचार करने की जरूरत है कि क्या हम संसार से जितना लेते हैं उतना देते हैं? और यदि हम नहीं देते हैं तो हम श्रेष्ठ नहीं हैं। जबकि हमारे मनीषियों ने कहा है-***बड़े भाग मानुष तन पावा।*** जो देवताओं को भी नहीं उपलब्ध है, वो मनुष्य को मिला है। इसलिए मनुष्य जीवन सबसे श्रेष्ठ माना गया है, चाहे देवता भी हो। मनुष्यके अतिरिक्त चाहे देवता हो, चाहे चींटी हो, चाहे छोटे से छोटा प्राणी हो, सभी प्राणी भोग योनि कहे जाते हैं। वे अपने कर्मों का भोग भोगने के लिये आते हैं। इस संसार में भगवान हमको बनाता है। लेकिन मनुष्य जाति के बारे में ऐसा कहा जाता है कि भोग तो यह भी भोगते हैं। लेकिन कर्म करने की स्वतंत्रता है इनके पास में और इससे श्रेष्ठ दूसरी उसके पास में विशेपता है, वह है धर्म की मान्यता, मर्यादाओं की मान्यता, दूसरों के साथ सामञ्जस्य बिठाने की मान्यता। यदि यह नहीं है तो पशुओं में और हमारे में

कोई अन्तर नहीं है। ऐसे मनुष्य समाज में से यह क्षत्रिय जाति है जिसने देना ही देना सीखा-पूर्व का इतिहास इसका साक्षी है। कुछ अर्से से, 2-4 हजार साल से हम कह सकते हैं कि देने की बजाय लेने की भावना पनपती गई तो मनुष्यता में गिरावट आ गई। उस गिरावट को किस प्रकार से ठीक किया जाय?

गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते है अर्जुन को, जो अविनाशी योग मैं तुमको प्रदान कर रहा हूँ वो सृष्टि के आदिकाल में सूर्य को दिया था। सूर्य ने महाराज मनु को दिया था और मनु से राजऋषियों तक आया। उसके बाद में यह लोप हो गया। लोप होने को हम नष्ट होना ना मानें, जैसे इस मकान के पिछली तरफ में कोई व्यक्ति खड़ा है और हमको दिखाई नहीं देता। तो उसका अस्तित्व तो है किन्तु लोप है। इसी तरह से जो हमारी श्रेष्ठताओं के लिये जो भगवान ने हमको अविनाशी योग प्रदान किया था, वह धीरे-धीरे लोप हो गया था। वह लोप हुआ ज्ञान हे अर्जुन! मैं तुमको दे रहा हूँ। उस बात को भी पाँच हजार साल हो गए। धीरे-धीरे वो लोप होने लगा तो गिरावट ज्यादा आने लगी। हम किस प्रकार से अच्छे व्यक्ति बनें? किस प्रकार से हम श्रेष्ठ प्राणी बनें। कहा तो यह जाता है कि भगवान ने सारे प्राणी मनुष्य के लिये बनाए और मनुष्य को भगवान ने अपने लिये बनाया है। मनुष्य सबसे अधिक प्रिय है। संतान तो सभी हैं और सभी प्रिय भी हैं लेकिन सबसे अधिक प्रिय मनुष्य प्राणी है। तो उस भगवान के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है? इस धरती से हम कितना लेते हैं? उसके प्रति क्या कर्तव्य है? पेड़ों से क्या लेते हैं? वनस्पति से क्या लेते हैं? सागर से क्या लेते हैं? नदियों से क्या लेते हैं, हम कितना लेते हैं? तो कर्म करने की छूट है, उस कर्म से वह चाहे तो देवता बन जाए और चाहे तो राक्षस बन जाए। हमको इन दस दिनों में, ग्यारह दिनों में, जो गिरावट आई है पाँच हजार साल से, उसका अपने अन्दर दर्शन करना है। किस प्रकार से हम पुन: श्रेष्ठ व्यक्ति बन सकते हैं? मनुष्य को भगवान ने श्रेष्ठ ही बनाया है तो हम नेष्ट क्यों बन गए हैं? कहीं इस कर्म करने की छूट के कारण हम नेष्ट न बन जाएँ। उन परिवारों से आए हैं, हम भारतवर्ष के लोग, जिनकी यह मान्यता है, हमारे राष्ट्र की मान्यता है कि राष्ट्र के प्रति हमारा दायित्व है। क्या हम उसका निर्वहन करते हैं। जिस कौम में हमने जन्म लिया है, उस कौम के प्रति जो हमारा दायित्व है, क्या हम उसका निर्वहन करते हैं?

उससे आगे आते हैं हम। एक श्रेष्ठ संस्था में संस्कारित होने के लिये आए हैं हम। अपने आपका निर्माण करने के लिये आए हैं। शिक्षक तो सहारा देते हैं। शिक्षक का मैनेजमेंट है, करना हमको है। हमको जैसे आए हैं वैसा ही रहना है या इससे अधिक और गिर जाना है। क्या हमको श्रेष्ठ बनकर के जाना है? यह छूट दी हुई है भगवान की। यहाँ कुछ मर्यादाएँ बनाई हैं। दो दिन से तो हम साथ रह रहे हैं। मर्यादाओं का पालन पूरा नहीं हो रहा है। जो कर रहे हैं वो पर्याप्त नहीं है, श्रेष्ठ बनने के लिये। श्रेष्ठ बनने के लिये संतोष कर लेता है, उसकी गति रुक जाती है। आपको और सबको दिखाई यह पड़ रहा है। मुझे भी दिख रहा है कि श्रेष्ठता की ओर कदम हमारे धीमे चल रहे हैं, गति कम है। और दिन इतने जल्दी निकल जायेंगे कि फिर कुछ होगा नहीं। अभी दस दिन का समय है। दस दिन में हम कितना अपने आपको श्रेष्ठ बना सकते हैं? न संघ प्रमुख, न शिक्षक, न आपका घटनायक, कोई भी आपको श्रेष्ठ नहीं बना सकता। यह एक भगवान के मंगलमय विधान का अंश है, उसका एक पाठ है। वो विधान तो दे दिया, विधान को मानें न मानें। संसार की ८४ लाख जो योनियाँ हैं वो भगवान के विधान को मानते हैं। एक मनुष्य मान भी लेता है और न भी माने। यह भगवान की दी गयी छूट का नाजायज लाभ उठाता है। तो हमको श्रेष्ठ बनने के लिये पंक्तिबद्ध चलना, शिक्षक की आज्ञा का पालन करना, घटनायक की आज्ञा का पालन करना, अपने से बड़ों की आज्ञा का पालन करना यह हमको सीखना है।

(शेष पृष्ठ 20 पर)

धर्म और शिक्षा

– श्री बी.एस. चन्देल

भारतवर्ष सदैव से ही धर्म परायण देश रहा है, क्योंकि धर्म ही मानव का संरक्षण और पोषण करता है। धर्म का नाश करने पर धर्म-त्यागी का भी विनाश हो जाता है। आचार्यों का भी इस सम्बन्ध में यही कथन है-

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

धर्म है क्या? जिससे इस संसार में उन्नति हो और परलोक में कल्याण की प्राप्ति हो सके, वही धर्म है। ऐसा महर्षि कणाद का कथन है। धर्म से लोक और समाज का कल्याण सम्भव होता है। धर्मरहित समाज उच्छृंखल बन जाता है। धर्म ही हमको भगवत प्रेम की ओर प्रेरित करता है। उसी के पालन से अनुशासित होकर हम स्वेच्छाचारिता से सुरक्षित रह सकते हैं। इसलिए हमको ईशोपनिषद इस प्रकार आदेश प्रदान करता है-

ईषा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जिथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

अर्थात् इस दृश्य जगत में जो कुछ भी है, वह सब ईश भगवान परब्रह्म परमात्मा से ओतप्रोत है। इस संसार का उपभोग त्याग भाव से ही करो। यह धन किसका है? कभी किसी का धन मत छीनो।

भारत का तो 'जीओ और जीने दो' आदर्श वाक्य मुख्य साधना-तत्त्व रहा है। तभी तो हमारे देश ने किन्हीं विदेशी और विजातीय राष्ट्रों पर सेना लेकर आक्रमण करने की नीति को स्वीकार नहीं किया। किसी जाति अथवा राष्ट्र को भयाकुल और संत्रस्त करके धन सम्पत्ति का अपहरण करना उपयुक्त नहीं समझा। इसके विपरीत आज की भौतिकवादी सभ्यता, जो स्वेच्छाचारिता को प्रोत्साहन देकर अन्यान्य राष्ट्रों का स्वत्व अपहरण करना धर्म मान रही है, घोर पाप है। इस प्रकार की अधर्म-नीति संसार के लिये महान् अनर्थकारी अभिशाप प्रमाणित हो रही है। वर्तमान में जिसे लोग स्वतंत्रता कहते हैं, वह वास्तव में स्वतंत्रता न होकर स्वच्छन्दता है। इस प्रकार की उच्छृंखल स्वतंत्रता से न तो व्यक्तिगत उन्नति हो सकती है और न समाज एवं राष्ट्र का यथार्थ कल्याण ही संभव है। इस प्रकार की उदण्डतापूर्ण दुष्प्रवृति से मानवता का विनाश अवश्य ही सन्निकट उपलब्ध होगा।

हमारे देश ने संसार के कल्याणार्थ विश्व-बन्धुत्व और विश्व-प्रेम की कल्पना के शुभ संदेश मानव जाति को प्रदान किए हैं। हमारे धर्म ने सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देकर संसार के सामने भव्य और नव्य संदेश प्रस्तुत किया है। वेद भगवान उद्घोष करते हुए कहते हैं-'

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानानामुपासते।।

अर्थात् तुम सब मिलकर रहो। तुम अपने धर्म में निरत रहो। एक बात बोलो। अपने मन में उन बातों की एक ही व्याख्या करो। एकचित्त होकर जिस प्रकार देव तुम्हारे प्रदान किये हुए हव्य को ग्रहण करता है, उसी प्रकार अपने सभी विरोधों को परित्याग करके उसके समान ही हव्य भाग का आदर करो।

समानो मंत्रः समितिः समानी,
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभिमन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि।।

अर्थात् सबका मंत्र एक हो। उसकी उपलब्धि भी सबके लिये समान हो। अन्तः प्रदेश, विचारधारा और ज्ञानावलोकन सभी के लिये समान सुलभ हो। तुम्हारे हृदयों में दूसरों का हित साधन करने के लिये एक ही प्रकार का सिद्धान्त निवास करता हो। तुम्हारे मानों में ईश्वर आराधनार्थ आहुति-दान की एक समान ही उदारता रखता हो। तुम सबका एक समान रहन-सहन हो।

उक्त आदर्श एक ऐसे समाज का है, जो सब प्रकार से एकरूपता के आधार पर अपना आचार-विचार बनाता है और धर्म के महाप्रसाद से जन-कल्याणकारी पथ की यात्रा के लिये प्रयाण करने की सद्भावना रखता है। ऐसे समाज में आपाधापी के लिये हाय-हाय नहीं होती। पारस्परिक कोई विरोध भाव नहीं होता। एक व्यक्ति दूसरे को नीचे गिराकर मत्स्य-न्याय के दूषित संदेश के सम्बन्ध में कहीं से कोई प्रोत्साहन प्रदान नहीं करता। आज के विश्व की संकटापन्न अवस्था को अवलोकन करते हुए वर्तमानकालीन स्थिति में मानवीय सद्गुणों को सीखने-सिखाने का प्रयास किया जाना नितान्त ही आवश्यक हो रहा है। हमारे देश को ही इस सम्बन्ध में पहल करनी होगी।

कहने के लिये हमारा देश स्वाधीन अवश्य है, किन्तु धर्माचरण के दृष्टिकोण से हम आज भी पराधीन हैं। आज भाषा, वेश-भूषा, आचार-विचार, खान-पान इत्यादि के विषय में हमने भौतिकवादी पाश्चात्य संसार का अन्ध भक्ति के साथ अनुसरण करना ही अपना आदर्श लक्ष्य बना रखा है। इस प्रकार की दुष्प्रवृत्ति से हमें सुरक्षित बनना होगा। हम जानते हैं कि संसार के अन्यान्य राष्ट्रों के साथ ही हमको भी सदाचारी बनकर जीवित रहना हमारा दायित्वपूर्ण कर्तव्य है। स्वाधीन राष्ट्रों की विचारधारा के अनुसार हम भी इस संसार में मानव-कल्याणकारी विश्व साम्राज्य के संचालन और परीक्षणार्थ एक महान स्वप्न को प्रकट देखना चाहते हैं।

हमें अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार ही, किसी देश और जाति के प्रति कोई ईर्ष्या अथवा घृणाभाव नहीं है। हम अपने धर्म, संस्कृति और राष्ट्र की रक्षा करते हुए समुचित रूप में, अपने मान-सम्मान और धर्म का आश्रय प्राप्त करके ही राष्ट्रोत्थान की दिशा में प्रगतिशील रहना चाहते हैं। हम अपनी विगत शताब्दियों की दासता-जन्य आसुरी शिक्षा-दीक्षा का दुर्वह भार उतार फेंकने के लिये व्यग्र बन रहे हैं। हम चाहते हैं सत्य, दया, न्याय, अहिंसा, उदारता, स्वावलम्बन, धैर्य, शौर्य, सत्साहस और सद्विवेक इत्यादि मानवी गुणों को धारण करके, एक नवीन क्रांति को जन्म प्रदान किया जाय। हमारी यथेष्ट प्रगति में आज की दूषित शिक्षा हमारे मार्ग का रोड़ा बनकर हमें अग्रगामी पथ की ओर अग्रसर नहीं होने दे रही है। अत: इस विकृत्ति-मूलक शिक्षा का बहिष्कार हमारे देश से शीघ्रातिशीघ्र होना अनिवार्य है।

आज की भौतिकवादी शिक्षा, मनुष्य को केवल सांसारिक सुख-उपभोग करने का ही साधन प्रदान करती है। इस शिक्षा का लक्ष्य धर्म और संस्कृति से कुछ भी सम्पर्क नहीं रखता। इस कुशिक्षा का बस केवल यही एक लक्ष्य है-

यावज्जीवं सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

अर्थात् जब तक जीओ, सुखपूर्वक जीओ; मनमाना आचार-व्यवहार पालन करो। धर्म-कर्म का कोई भी विवेक रखने की आवश्यकता नहीं है। सुखोपभोग के लिये जितना ऋणी क्यों न बनना पड़े, कोई चिन्ता नहीं है; क्योंकि कदाचित् फिर इस प्रकार का स्वच्छन्दतापूर्ण व्यवहार कर सकने का अवसर प्राप्त हो या न हो।

आज हमारे देश में अर्थ चक्र बहुत बुरी प्रकार से परिचालित हो रहा है। इसी के दुष्प्रभाव से गाँव-शहर, शिक्षित-अशिक्षित, पुरुष-स्त्री, शासकीय-अशासकीय, श्रमिक, व्यापारी इत्यादि सभी कोई, सभी स्थान पर, सभी समय-छलछिद्र, बेईमानी, भ्रष्टाचार, मिलावट, चोरी, जुआ, शराब, व्यभिचार और अनेकानेक घृणित कृत्यों द्वारा 'धनार्जन' करने के लिये कटिबद्ध बन रहे हैं। इस प्रकार हमारे देश के इस घोर अधर्माचरण को कुशिक्षा का ही दूषित परिणाम कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं है। इस कुशिक्षा ने हमारे देश के युवा वर्ग के मस्तिष्क को इतना कुण्ठित बना दिया है कि हम स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी उन्मादित अवस्था में कालयापन कर रहे हैं। कितने परिताप और पश्चाताप का विषय है कि आजादी

(शेष पृष्ठ 24 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

नजरबन्दियों को दी जाने वाली सुविधा के नाम पर जेल में अनेक नियम, कानून-कायदे तो बने हैं पर वे केवल कहने को हैं, पूज्य श्री तनसिंह के साथ जेल में बने इन नियम, कानून, कायदों के सर्वथा विरुद्ध आचरण होता था। पूज्य श्री तनसिंहजी ने इन सुविधाओं के सम्बन्ध में बताया-''नियमों में और कहने को यह कहा जा सकता है कि नजरबन्दियों को अनेक प्रकार की सुविधाएँ होती हैं किन्तु सुविधाओं के लिये बने हुए नियम हमारे लिये वे न बने हुए के समान थे। टोंक जेल में हमारे साथ जिस प्रकार का बर्ताव किया गया वैसा शायद ही किसी नजरबन्द के साथ किया गया हो।''

भूस्वामी संघ के दूसरे आंदोलन में पूज्य श्री तनसिंहजी को टोंक जेल में रखा गया और कहने को कहा गया कि उन्हें 'ए' क्लास की सुविधा दी गई। पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा-

''मुझे तो बड़ा खेद हुआ कि गृह मंत्री ने एक दिन विधानसभा में यह कहा कि तनसिंह को टोंक जेल में रखा गया है और 'ए' क्लास दी गई जबकि कोई भी वहाँ आकर देखता तो हमें 'सी' क्लास से भी गई बीती क्लास दी गई थी।''

जेल में दी जाने वाली सुविधाएँ और उनके सम्बन्ध में बने कानून-कायदे सब फायलों में दफन थे यह सच्चाई जानने के लिये हम आगे बढते हैं और पूज्य श्री के नजरिये से जानने की चेष्टा करेंगे।

वीर अर्जुन और राष्ट्रदूत जैसे समाचार पत्र जेल में नहीं मिला करते थे। नियमावली के अनुसार अपने निजी खर्च पर ऐसे अखबार मंगवा सकते हैं पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''मोहरसिंहजी वकील मुझसे मिलने के लिये आये थे तब उनको मैंने कह दिया कि जयपुर के भूस्वामी संघ कार्यालय को वे सूचित कर दें कि हमारे नाम से वीर अर्जुन और राष्ट्रदूत नियमित रूप से खरीद कर डाक द्वारा पोस्टल सर्टिफिकेट के द्वारा जेल के पते पर भेज दिया करें। वकील मोहरसिंहजी ने हमारे आदेशानुसार जयपुर कार्यालय को सूचित कर दिया था, इसलिए तारीख 15.2.56 से नियमित रूप से समाचार पत्र हमारे नाम से भेजे जाने लगे किन्तु हमें उनमें से एक भी अखकार नहीं मिला करता था। सारे समाचार पत्र पुलिस अधीक्षक के पास भेज दिये जाते थे। भेजते वक्त जेलर लाल स्याही से स्वयं उन समाचार पत्रों पर निशान कर देता था और पुलिस अधिकारी उन समस्त समाचारों को कटवा देते थे। इतना होते हुए भी कटे हुए समाचार पत्र भी हमें नहीं दिये गये।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''जेलर को इस विषय में समझाया कि निजी खर्च से आने वाले किसी समाचार पत्र के किसी भी कालम को काटने का उनका अधिकार नहीं है किन्तु जेलर जैसे कानून समझने की माद्दा नहीं रखता था अथवा जानबूझकर कानून की अवहेलना किया करता था।''

पुलिस अधीक्षक केवल वही पत्र रोक सकता है जो हिंसा को बढावा देता हो या उससे सरकार को कोई खतरा पैदा हो। पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''नियम 14-5 यह है कि पुलिस अधीक्षक सिर्फ वही पत्र रोक सकता है जो हिंसा से सरकार को उलटने का प्रयास करता हो अथवा वैसी प्रेरणा देता हो, लेकिन राष्ट्रदूत, वीर अर्जुन और नवयुग जैसे समाचार पत्रों में ऐसा कुछ नहीं था। नियम यह है कि यदि पुलिस अधीक्षक किसी कारण से कोई समाचार पत्र अथवा पुस्तक रोकता है तो उसकी सूचना उसे जिला मजिस्ट्रेट के पास भेजनी होगी और जिला मजिस्ट्रेट स्वयं निर्णय करेगा कि कौनसा समाचार पत्र रोका जाए और कौनसा नहीं लेकिन

राजस्थान के इस 'मच्छ गलागल और सुणै न कोई सांभले'' में पुलिस अधीक्षक व जिला मजिस्ट्रेट तो क्या डिप्टी जेलर तक के अधिकार स्वयं सरकार ने अपने हाथों में ले रखे हैं।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''तारीख 24.2.56 को हम समाचार पत्रों के लिये अन्तिम रूप से तय करके गये थे कि या तो जेलर मान जावे अन्यथा हम भूख हड़ताल कर देंगे। मैंने उसे फिर कानून का हवाला देकर समझाया और कहा कि या तो वे हमें बिना कटिंग के अखबार दें अन्यथा सख्त कदम उठायेंगे, जिसकी रूपरेखा भी हमने बना ली है। हमारी चेतावनी व आने वाली विषम परिस्थितियों को भांपकर जेलर ने आगे से नियमित रूप से आने वाले समाचार पत्र हमें देना स्वीकार कर लिया और समाचार-पत्र मिलने लग गये पर तारीख 16.3.56 को घटित घटना से नाराज होकर जेलर ने पुन: हमारे समाचार पत्र रोक दिये।''

तारीख 16.3.56 की घटना के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''रजिस्ट्रार हाईकोर्ट से पत्र आया कि मैं यदि नजरबन्दी की आज्ञा के विरुद्ध कोई प्रतिवेदन करना चाहूँ तो एक सप्ताह के भीतर वैसा कर दूँ। जेलर ने तारीख 16.3.56 को लिखित में मेरा उत्तर जानना चाहा। मैंने उसमें लिख दिया कि मुझे मेरे वकील से एकान्त में मिलने नहीं दिया इसलिए मैं कोई प्रतिवेदन नहीं कर सका। ऐसा मैं पहले ही रजिस्ट्रार को लिख चुका हूँ। इस उत्तर ने जेलर के आग लगा दी। वह वकील की मुलाकात की घटना को यथासंभव छिपाना चाहता था और मैं उसे बाहर निकालना चाहता था। स्थिति इस कदर आगे बढ गई कि उसके रोके भी यह तथ्य रुक नहीं पा रहा था इसलिए वह नाराज हो गया और इसके फलस्वरूप उसने हमारे समाचार पत्र रोक दिये।''

समाचार पत्र जो मिल रहे थे उन्हें रोक दिये जाने पर पूज्य श्री तनसिंहजी ने फिर से भूख हड़ताल करने का जेलर को नोटिस दिया। पूज्यश्री ने बताया-''तारीख 20.3.56 की शाम को मैंने उसे भूख-हड़ताल का नोटिस वार्डर विजयसिंह के मार्फत रात्रि को भेजा। उसमें लिख दिया कि न तो मैं भोजन करूंगा, न पानी पिऊँगा और न औषधि अथवा वस्त्र धारण करूंगा। उस नोटिस के अनुसार तारीख 21.3.56 को भूख हड़ताल प्रारम्भ कर दी किन्तु जेलर ने कहा कि मुझे कोई नोटिस ही नहीं मिला है, इस पर उसी दिन कोई मजिस्ट्रेट सनाख्ती की परेड के लिये आया था उसी समय उसकी ही उपस्थिति में जेलर को मैंने दूसरा नोटिस दिया। जेलर ने भरसक कोशिश की कि इस भूख हड़ताल की बात बाहर न जावे इसलिए दिन भर वह हनीफ खाँ हैड वार्डर के मार्फत समझौते की वार्ता चलाता रहा किन्तु हम इसी बात पर अड़े हुए थे कि जब तक सामाचार पत्र नहीं मिलते तब तक भूख हड़ताल नहीं तोड़ेंगे। जेलर सख्त हो गया। उसने मेरी भूख हड़ताल की कोई परवाह नहीं की। डॉक्टर को भी नहीं बुलाया। दिन भर मैंने पानी नहीं पिया और न वस्त्र ही पहने। रात्रि को भी मैंने कोई कपड़ा नहीं ओढा। रात्रि को वर्षा हुई और सर्दी भी बढ गई किन्तु रात भर ठिठुरते रहने पर भी उस माई के लाल के कान पर जूं तक नहीं रेंगी।''

जेल में पूज्य श्री तनसिंहजी के साथ हर तरह से अन्याय किया गया। समाचार पत्रों के लिये उन्हें मानसिक यातनाएँ दी गई। बार-बार काल कोठरी का भय दिखाया जाता था। वकील से एकान्त में मिलने तक नहीं दिया गया तो पूज्यश्री ने नियमों का हवाला देते हुए आई.जी. जेल से हर्जाने की माँग की। पूज्यश्री ने बताया-''मैंने आई.जी. जेल से 500 रुपये का हरजाना मांगा था कि मुझे वकील से नियमानुसार मिलने नहीं दिया गया। तारीख 22.3.56 को मुझे कलेक्टर और जेलर की भयंकर साजिश का पता लगा जबकि जेलर ने कलेक्टर का वह पत्र मेरे पास भेजा जिसमें लिखा था कि तारीख 11.2.56 को मेरे वकील को मुझसे एकान्त में मिलने का अवसर दे दिया गया था इसलिए 500 रुपये के हर्जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उस पत्र को देखकर मेरे तन बदन में आग लग गई। भूख हड़ताल पर यह मेरा दूसरा दिन था। पानी भी नहीं लिया था और रात भर वस्त्र का

प्रयोग न करने के कारण सारी रात सर्दी में बुरी तरह ठिठुरता रहा किन्तु हिरण्यकश्यप समान मनुष्य रूप में फिरने वाले दैत्यों को मेरी अवस्था पर कुछ भी चिन्ता नहीं हुई। इस पर हलाहल झूठ का इतना नग्नतापूर्ण नृत्य देखकर मुझे भयंकर क्षोभ हुआ। मेरे वकील की अर्जी पर जेलर ने अपने हाथों से लिखा था कि एकान्त में मिलने की स्वीकृति नहीं दी जा सकती क्योंकि ऐसी ही उनको आज्ञा है। इस पर भी इस प्रकार झूठ की ओट लेकर न्याय का गला घोटकर मेरे बन्दी जीवन की सीमित परिस्थितियों व साधनों के अभाव का नाजायज लाभ उठाकर अपना मतलब गांठने की जो कुप्रवृत्ति जेलर व कलेक्टर ने अपनाई थी उससे मैं बड़ा कुपित हुआ। यहाँ के सरकारी कर्मचारियों ने मेरे खिलाफ भरपूर षड़यंत्र कर रखा है। एक तो पिछले दिन से भूख हड़ताल और पानी के साथ-साथ वस्त्र भी ग्रहण नहीं किए थे जिस पर इस प्रकार षड़यंत्र भरा पत्र मेरे पास भेजना, मैं तो यही समझता हूँ कि जेल की सीमित परिस्थितियों में मेरी स्थिति का नाजायज फायदा उठाकर जो मानसिक कष्ट दिये जाने का नापाक, शर्मनाक और बेहद पशुता भरा रवैया बनाया गया था उसके पीछे राजनैतिक दृष्टिकोण ही था।''

जेलर कलेक्टर की कठपुतली बना हुआ था। वह कलेक्टर के इशारे पर पूज्य श्री तनसिंहजी को बेइज्जत करने व मानसिक संताप देने के लिये उनकी सबके सामने खुले में तलाशी लेना, डॉक्टर जब कभी देखने आता तो साथ में गार्ड रखना, डॉक्टर से एकान्त में मिलने ही नहीं देना, बात-बात में काल कोठरी का भय दिखाना इत्यादि तरीकों से हरकतें कर परेशान करता था। पूज्य श्री ने बताया-''मेरी तलाशी लेने जेलर दल-बल सहित मेरे बैरक में आया। सभी वार्डरों के हाथों में लाठियाँ थी। मैंने जेलर को कहा कि उसने मेरा अत्यन्त अपमान किया है। मेरे सामने और कोई चारा नहीं था कि या तो मैं इस निरंकुश अराजकता और अन्याय के विरुद्ध बल प्रयोग करूं अथवा उसे सहन करूं। दोपहर को डॉक्टर बुलाया गया। डॉक्टर गार्ड के साथ आया, मैंने उससे मिलने से इन्कार किया कि गार्ड के साथ आने वाले किसी व्यक्ति से मैं नहीं मिलूंगा क्योंकि यह मेरी तोहीन है। इस पर डॉक्टर ने गार्ड को हट जाने को कहा किन्तु वह नहीं हटा। तब डॉक्टर मुझे बैरक में ले गया, जहाँ बातें शुरू हुई थी कि बाहर हल्ला सुनाई दिया। बाहरआकर देखा तो श्री सवाईसिंह नजर आये जिसे गार्ड ने पकड़ रखा था और तलाशी ली जा रही थी। यह तलाशी वार्डर ले रहे थे और बिल्कुल बाहर ली जा रही थी। मैं दौड़ा-दौड़ा आया और श्री सवाईसिंह को दोनों वार्डरों से छुड़ाया और उसे वार्ड में ले जा रहा था कि जेलर ने घेरा डलवा दिया। मैंने उसे कहा कि झगड़े को बाद में निबट लेना अभी हमें बातें कर लेने दो किन्तु जेलर ने न केवल मानसिक संतुलन ही खो दिया था बल्कि उससे मानवता तक किनारा ले चुकी थी। मुझे उसने कहा कि मैं तुम्हें काल कोठरी देता हूँ। मैंने चुपचाप श्री सवाईसिंह को छोड़कर काल कोठरियों की तरफ जाना शुरू किया। डॉक्टर पास ही खड़ा था, उससे मैंने कहा देख लीजिये मेरे व आपके बातें करते करते बाहर श्री सवाईसिंह से झगड़ा किया जा रहा था। उसका बीच-बचाव करने के लिये मध्यस्थता कर रहा था और इधर मुझे ही कालकोठरी दी जा रही है। डॉक्टर कुछ नहीं बोला। मैं चलते-चलते आधी दूर ही आया कि मेरे मन में विचार आया कि अहिंसा मनुष्यों के हृदय परिवर्तन के लिये प्रयोग में ली जाती है, किन्तु जो मानवता खो देता है उसके सामने अहिंसा प्रयोग जंगली घोड़े की आरती करना है। इस अन्यायपूर्ण आदेश का विरोध करना मैंने अपना नैतिक कर्तव्य समझा और मैं बीच मार्ग में घूमकर धोती चढाकर खड़ा हो गया कि मैं काल कोठरी में नहीं जाता जिस किसी की हिम्मत हो वह आकर मुझे जबरदस्ती ले जाय। वार्डर सब ठिठक गये और एक भी आगे नहीं बढा। जेलर बोला मैं आज्ञा देता हूँ कि तनसिंह को काल कोठरी में जबरदस्ती डाल दिया जाय। मैंने कहा मैं आपकी इस आज्ञा को गैर कानूनी, अन्यायपूर्ण और अमान्य मानता हूँ इसलिए मैं इसका बल से विरोध करता

हूँ। जब किसी को मेरे हाथ लगाने की हिम्मत नहीं पड़ी तो हैड वार्डर ने स्थिति संभाल ली और कहा कि आप काहे को नाराज होते हो, चलो बैरक में चलें और इस पर मैं अपनी बैरक में आ गया।''

सरकार चाहती थी कि हड़ताल समाप्त कर दे इसलिए आपस में बातचीत करने के लिये आयुवानसिंहजी को टोंक जेल में लेकर आये। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री ने बताया-''तारीख 23.3.56 को दोपहर में आयुवानसिंहजी लाए गए। वे पहले से ही भूख हड़ताल पर थे। हम दोनों ने भी उनकी सहानुभूति में भूख हड़ताल कर दी। तारीख 23.3.56 का बनाया हुआ भोजन भी नहीं खाया। पहले दिन आयुवानसिंहजी को हमसे अलग करने की तजबीज की गई। मैंने उन्हें कहा कि अलग भेजना है तो उन्हें यहाँ भेजना एक मजाक थी। सरकार ने उन्हें यहाँ बातचीत के लिये भेजा है और बातचीत नहीं करने दी जाती तो हम सरकार को उत्तर भेजेंगे कि उनका भेजना व्यर्थ हुआ। इस पर डॉक्टर भी नरम हो गया और हमें आपस में एक स्थान पर रखा गया। यह भूख हड़ताल तारीख 26.3.56 को दोपहर को लगभग दो बजे समाप्त हुई। सरकार ने माँगें मंजूर कर ली और गृहमंत्री का हमारे पास इसी विषय का पत्र आ गया था। इस हड़ताल की माँगें थी कि सभी भूस्वामी बंदियों को भोजन सम्बन्धी सुविधाएँ दी जानी चाहिए। यह माँग कुछ पत्र व्यवहार के बाद स्वीकृत हुई। इस प्रकार तीन भूख हड़तालों में सिवाय अन्तिम हड़ताल अन्य हड़तालों में हमारे साथ नितान्त ही अभद्रता और उपेक्षा पूर्ण व्यवहार किया गया था।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने टोंक जेल में रहते पल-पल में जो संताप झेले हैं, उनके सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि 2 फरवरी को बन्दी होकर 31 मार्च, 1956 को जबकि हम लोग जयपुर भेजे गये, इन दो माह के छोटे से समय में मैंने जो कटुता, अन्याय, उपेक्षा और अशिष्टता सहन की थी वैसी कभी अपने जीवन में नही की। अपने जीवन में मैंने अनेक विषम परिस्थितियाँ सहन की हैं। शारीरिक कष्ट सहना मेरा सदैव का खेल रहा है तथा बाहर भीतर के विरोध में ही मैंने सामाजिक और राजनैतिक जीवन में कदम बढाए थे किन्तु मुझे ऐसा कभी अनुभव नहीं हुआ कि मैंने अन्याय का विरोध करने के लिये अपने आपको असमर्थ पाया हो।

जितनी कटुता मैंने कांग्रेसी सरकार और जेल कर्मचारियों के विरुद्ध जीवन भर में अनुभव नहीं की उतनी मुझे इन दो माह में प्राप्ति हुई।

नियमित रूप से तंग करने की शृंखला कुछ ऐसी लग रही थी जैसे कि यह सब कुछ योजनाबद्ध कार्य हो रहा है। वार्डरों की उपस्थिति में मेरी तलाशी, काल कोठरी की सजाएँ सुनाए जाना, बाहर बारी में से खड़ा-खड़ा बात करूं और जेलर न तो खड़ा होता था और न भीतर ही बुलाता था तथा न बाहर कुर्सी ही देता था कि जिस पर मैं बैठ सकता। नियमित रूप से यह बार-बार स्मरण कराया जाता था कि मैं कैदी हूँ न कि और कुछ। टोंक जेल के पुलिस अधीक्षक ने अपनी बहादुरी भी इसी में समझी कि भूस्वामी आंदोलन की एक भी खबर किसी भी अखबार में न रह जाए। मेरे पास आज भी उन अखबारों के नमूने सुरक्षित हैं कि जिनका कटिंग किया गया है। उनमें भूस्वामी संघ की प्रत्येक खबर को काटा जाता था।

(क्रमशः)

महापुरुष सिर्फ बड़ा आदमी नहीं होता, एक प्रतीक होता है-किसी महान उद्देश्य का, किसी महान कर्म का। लक्ष-लक्ष मानव मन की आशाएँ, आकांक्षाएँ ही एकत्र होकर महापुरुष का रूप धारण करती हैं।

- रामवृक्ष बेनीपुरी

प्रेरक कथानक

– संकलित

''जब माया परीक्षा लेत है तब बूढ़े जवान होइ जात हैं, नामर्द मर्द बनि जात हैं। साधु बनब आसान है लेकिन निबाहब कठिन है। ***धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे*** (मानस, 1/85 सोरठा) हो, माया बड़ी अपरबल है।''

घोर जंगल में एक आश्रम था। बड़े अच्छे तत्त्वदर्शी महापुरुष वहाँ निवास करते थे। दस-पन्द्रह शिष्य भी उनके संरक्षण में क्रिया तथा सेवा में संलग्न थे। एक दिन एक शिष्य बोला,-''महाराजजी! आज्ञा हो तो वैराग्य कर आऊँ। तीर्थाटन की प्रबल इच्छा है।'' महाराजजी बोले,-''बेटा! अभी तुममें क्षमता नहीं है। माया बड़ी प्रबल है। उसकी सर्वत्र धार है। न जाने कब कौन-सा दाँव लगा दे, तुम जान ही नहीं पाओगे।'' शिष्य ने कहा,-''महाराजजी! बस आपकी कृपा बनी रहे तो माया क्या कर लेगी?'' महाराजजी ने कहा,-''हाँ, कृपा तो है लेकिन बचना! मैं भी तो कुछ कह रहा हूँ।'' शिष्य ने प्रणाम किया, तो महाराज ने पुनः बचने के लिये सतर्क किया।

शिष्य अभी आश्रम से एक मील भी न गया होगा कि सामने से एक बुढ़िया तेजी से आती दिखाई पड़ी। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं किन्तु आँखों में तेज चमक थी। घोड़े की एक लगाम लिए वह उड़ती-सी चली आ रही थी। इधर-उधर देखती हुई आगे बढ़ती जा रही थी। महात्मा को दया आ गयी। सोचा, लगता है बेचारी का घोड़ा कहीं खो गया है। बोला,-''बुढ़िया, इधर कोई घोड़ा नहीं गया! तू लगाम लेकर कहाँ दौड़ी जा रही है?'' बुढ़िया बोली,-''बाबा! यह महात्माओं को लगाती हूँ, घोड़ों को नहीं।'' ब्रह्मचारी बिगड़ा,-''कुतिया कहीं की! कहती है महात्माओं को लगाम लगाती हूँ। जो करना हो कर! क्या उखाड़ेगी?'' बुढ़िया बोली,-''अच्छी बात है बाबा! बचना!'' ब्रह्मचारी पुनः जोर से बिगड़ा। बुढ़िया आगे बढ़ गयी।

ब्रह्मचारी एक मील और आगे बढ़ा तो नदी पड़ी। नदी के पार एक बाला विकल होकर रो रही थी। मुँह लाल हो गया था। आँखें रोते-रोते सूज आयी थीं। पैरों में मेंहदी लगाये, सजी-सँवरी किसी भले घर की नववधू प्रतीत होती थी। पार होते ही महात्मा ने दयावश पूछा,-''तुम रो क्यों रही हो? तुम्हारे साथी क्या जंगल में भटक गये? तुम्हें क्या दुःख है?'' बाला कुनमुनाई, उठी और धीरे-धीरे चलकर ब्रह्मचारी के पास आयी। पाँच रुपया उसके चरणों पर रखा, प्रणाम किया, बोली,-''महाराज! मुझ-जैसी अभागिन इस सृष्टि में कोई नहीं है।'' इतना कहकर वह पुनः वहीं जाकर बैठ गयी और रोने लगी। ब्रह्मचारी ने विचार किया-है बड़ी धर्मात्मा! इसके ऊपर कोई भारी आफत आयी है। इसकी सहायता करनी चाहिए। बोला,-''कुछ बतायेगी भी कि बात क्या है?'' बाला क्रमशः शान्त हुई, बोली,-''महाराजजी! मैं मायके से आ रही हूँ। उस पार, वह जो गाँव दिखाई दे रहा है, मेरी ससुराल है। बीच में यह नदी बढ़ गयी। अब लौटती हूँ तो बड़ा अपशकुन माना जाता है। शुभ घड़ी में विदाई हुई है। उस पार कैसे जाऊँ? नदी बढ़ी है। बस यही दुःख है। अब तो हम न घर के रहे न घाट के। मर जाना शेष है। शेर-बाघ इस जंगल में खा लें, यही बाकी है। हमारी दुनिया का दीपक बुझ गया। महाराज! मुझ-जैसी अभागिन कोई नहीं है। आप दयालु हैं, सन्त हैं, आप से क्या प्रयोजन? आप जायँ। क्यों मुसीबत में पड़ते हैं? महाराजी! अपनी करनी पार उतरनी। जैसा मैंने किया है, कौन भोगेगा?'' उठी और दस रुपया पुनः पैर पर चढ़ाया, प्रणाम किया। बोली,-''महाराज! तीरथ में जा रहे हैं। ले लें, गाँजा-भाँग में काम आयेगा।''

ब्रह्मचारी चलने लगा तो सोचा, क्या कोई उपाय हो सकता है? रास्ते में कहीं कोई दिखलाई भी नहीं पड़

(शेष पृष्ठ 32 पर)

गतांक से आगे

असतो मा सद्गमय

– स्वामी यतीश्वरानन्द

व्यष्टि और समष्टि :

व्यक्तिगत या व्यष्टि चेतना का अनुभव करने के बाद यह जाना जा सकता है कि यह व्यष्टि चेतना अनन्त अपरिवर्तनशील चेतना या ब्रह्म का एक अंश है। लेकिन इसके लिये हमें अन्तर्मुखी होकर चिंतन और मनन का जीवन यापन करना होगा। कुछ लोग व्यष्टि चेतना का साक्षात्कार करने के बाद ही समष्टि-चेतना के संस्पर्श में आने का प्रयास करते हैं, जबकि दूसरे सर्वदा तथा सभी स्तरों पर परमात्मा का चिंतन करने का प्रयत्न करते हैं, क्योंकि व्यक्तित्व विभिन्न स्तरों पर परमात्मा के साथ संयुक्त रहता है।

यदि मैं अपनी देह के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में सोचने का प्रयत्न करूँ, तो पाऊँगा कि वह अन्य सभी की देहों की तरह जड़ पदार्थ के एक अनन्त सागर का अंश है। स्थूल देह से जब मैं प्राणमय शरीर पर आता हूँ, तो मैं अनुभव करता हूँ कि मुझमें विद्यमान प्राणशक्ति विराट् प्राणशक्ति का अंश है। मनोवेगों और भावनाओं पर आने पर मैं उन्हें विराट्, व्यापक भावनाओं और मनोभावों का अंश पाता हूँ। इसी तरह मेरी चेतना विराट् चेतना का अंश है, मन और इन्द्रियाँ जिसके यंत्र या करण हैं। और अन्त में मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरी विशुद्ध व्यष्टि चेतना, विशुद्ध अनन्त चैतन्य या ब्रह्म का अंश है। यही परम-चैतन्य हमारी सभी क्रियाओं और विचारों के पार्श्व में, उन्हें सत्ता प्रदान करता हुआ विद्यमान है। अत: हमारा व्यक्तित्व एक मिश्रित ईकाई है, जिसका स्थूल से सूक्ष्म तथा सूक्ष्मतर स्तरों की ओर अग्रसर होते हुए विश्लेषण किया जाना चाहिए। यदि कोई यथार्थत: अन्तर्मुखी होवे, तो किसी समय वह यह अनुभव कर सकता है कि वह मानो विचारों का एक समूह बन गया है, मानो उसकी देह विचारों के एक सरोवर में तैर रही है।

सामान्यत: हमारा देह के साथ इतना अधिक तादात्म्य बोध होता है तथा हम उसे इतनी स्थूल दृष्टि से देखते हैं कि हमारे लिये यह कल्पना करना भी कठिन होता है कि वह हाड़ माँस के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हमें और अधिक संवेदनशील होना चाहिए तथा आत्मविश्लेषण की और अधिक क्षमता अर्जित करनी चाहिए। हमें उच्चतर संवेदनशीलता अर्जित करनी चाहिए, जिससे हम इन सभी सूक्ष्म पहलुओं के प्रति सजग हो सकें।

यदि हम उच्चतर संवेदनशीलता का विकास करें, तो हम अपने व्यक्तित्व को विचारों के एक समूह, वृत्ति-समूह, में पर्यवसित कर सकेंगे। और विचार आखिर सूक्ष्म पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, तथा वे दृश्य जगत् के एक अंश हैं, चरम सत्ता अथवा परमार्थ कभी नहीं। प्रारम्भ में हमारा व्यक्तित्व एक धधकते हुए गरम लोहपिण्ड की तरह होता है, जिसमें लोहपिण्ड तथा लाल अग्नि-प्रकाश अभिन्न प्रतीत होते हैं। लेकिन उन्हें पृथक किया जा सकता है। वे स्वरूपत: एक नहीं हैं। कभी-कभी इस विशुद्ध-चैतन्य के अस्तित्व का देह से पृथक अनुभव भी किया जा सकता है। किसी समय, किसी अति उच्च अवस्था की प्राप्ति पर स्वयं का देह और मन से पृथक अनुभव किया जा सकता है।

हमारी सभी भावनाएँ और संवेदन देह के सत्यत्व पर आधारित हैं। आध्यात्मिक अनुभूति के बाद भी हमारी भावनाएँ और संवेदन एवं सम्बन्ध बने रहते हैं, लेकिन वे देह से सम्बधित नहीं होते। देहात्मबोध से उठने पर भी हम एक दूसरे से, पूर्ण परमात्मा के अंशों के रूप में जुड़े रहते हैं, और यह सम्बन्ध पति-पत्नी, माता-पिता और संतानों तथा भाई-बहन और मित्रों के बीच सम्बन्ध से कहीं अधिक घनिष्ट होता है।

आध्यात्मिक प्रगति के साथ-साथ एक प्रकार के मानसिक एक्स-रे का विकास होता है, जो स्पष्ट विश्लेषण के लिये बहुत आवश्यक है। तब हम वस्तुओं और

सम्बन्धों को गहराई से देखना सीख लेते हैं, और अपने चंचल मन द्वारा धोखा नहीं खाते। इस मानसिक एक्स-रे को अपनी ओर घुमाकर अपने वास्तविक स्वरूप का पता लगाना चाहिए।

एक सच्चा व्यापक दृष्टिकोण सर्वदा दूसरे लोगों पर हमारी अधिकारात्मक पकड़ को ढीला करता है, लेकिन सामान्यत: हम अन्य सभी का अपने स्वयं के स्थूल अथवा सूक्ष्म सुख के लिये उपयोग करते हैं। हमारा सारा दु:ख, हताशा, नैराश्य इसी कारण होते हैं। साधना के सम्यक् मार्ग का अनुसरण करने से, तथा सभी परिस्थितियों में उस पर बने रहने से जीव के लिये अपनी असीम उपाधियों से छुटकारा पाना, आत्मा का अनुभव करना तथा परमात्मा के साथ अपने नित्य सम्बन्ध का साक्षात्कार करना सम्भव होता है। जैसा कि श्रीरामकृष्ण ने कहा है : ''विचार करते करते फिर मैं नहीं रह जाता। जब तुम प्याज छीलते हो, तब पहले लाल छिलके निकलते हैं। फिर सफेद मोटे छिलके। इसी तरह लगातार छीलते जाओ तो भीतर ढूंढने से कुछ नहीं मिलता।''

व्यष्टि चेतना को बनाये रखकर भी समष्टि चेतना के संस्पर्श में आया जा सकता है। और जब तक यह नहीं होता, तब तक अनुभवातीत चेतना की अवस्था की प्राप्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। उच्चतम अनुभूति की प्राप्ति क्रमपूर्वक होती है। अनन्त की बातें करने मात्र से कुछ नहीं होगा; अद्भुत अटकलबाजियों और काल्पनिक उड़ानों से कुछ नहीं होगा।

अपनी वर्तमान अवस्था से ऊपर उठने का सचेतन प्रयत्न करना चाहिए। तब, प्रगति करने पर निम्न स्तर पर द्वन्द्व नहीं रहेंगे, लेकिन उच्चतर स्तर पर द्वन्द्व उठेंगे। उच्चतम स्तर तक पहुँचने तक संघर्ष और द्वन्द्व बने रहेंगे। समग्र दृश्य जगत् को दूसरे अथवा तीसरे दर्जे की सत्ता प्रदान करने पर हम दृश्य जगत् से अप्रभावित रह सकते हैं।

भौतिक जगत् का स्वरूप :

जो कुछ चेतना का विषय बनता है, वह सब माया है। तुम्हें ज्ञाता को ज्ञेय से, द्रष्टा को दृश्य से, साक्षी को उसके द्वारा साक्ष्य की जा रही वस्तुओं से तथा अनुभवकर्ता को अनुभूत विषयों से पृथक् करना चाहिए। आध्यात्मिक यात्रा के प्रत्येक स्तर पर स्पष्ट और निर्मम विश्लेषण तथा स्पष्ट चिंतन होना चाहिए।

जर्मन दार्शनिक काण्ट के अनुसार बाह्यपदार्थ है, लेकिन हम उसका वास्तविक स्वरूप नहीं जानते। जब हम उसे देखते हैं, तो देश, और काल उस प्रत्यक्षीकरण में अपना कुछ योगदान कर देते हैं। वेदान्ती कहता है कि जिसे काण्ट देश, काल और निमित्त कहते हैं, वह माया है, तथा उसका अतिक्रमण करना होगा। काण्ट के अनुसार उसका अतिक्रमण करने का कोई उपाय नहीं है, अत: उन्होंने कहा कि ''वस्तु-स्वरूप'' को कभी भी जाना नहीं जा सकता। वेदान्त उपाय जानता है, और इसे करने की विधि बताता है। काण्ट मन तथा दृश्य जगत् के परे जाने की, दृश्य से द्रष्टा को पूरी तरह पृथक् करने की सम्भावना के बारे में नहीं जानते थे। जहाँ तक काण्ट पहुँचे हैं, वहाँ से वेदान्त प्रारम्भ होता है।

भौतिक विषय सदा प्रत्यक्ष ज्ञान के विषय होते हैं, क्योंकि वे किसी न किसी इन्द्रिय के द्वारा जाने जाते हैं। इन्द्रियाँ स्वयं मन के द्वारा प्रत्यक्षीकृत होती हैं। पुन: मन आत्मा का विषय होता है, जो नित्य साक्षी अथवा द्रष्टा है, तथा कभी भी दृश्य विषय नहीं बन सकता, क्योंकि ऐसा होने पर अनावस्था दोष आ जाएगा। हमें कहीं न कहीं रुकना होगा।

वेदान्त में चैतन्य को सदा महत्त्व दिया जाता है। द्रष्टा और दृश्य, मन और जड़ पदार्थ, सब चैतन्य में अवस्थित हैं। हमें इस तथ्य को कभी नहीं भूलना चाहिए, अन्यथा सभी बातों में गड़बड़ होने का तथा मुख्य विषय के दृष्टि से ओझल होने का भय है। गहरी निद्रा में चैतन्य रहता है। निद्रा से जागने पर हम कहते हैं, ''मैं कुछ नहीं जानता था'', लेकिन, ''मैं कुछ नहीं जानता था'', यह कहने के लिये गहरी निद्रा में चेतना विद्यमान होनी चाहिए। अत: ऐसा कोई भी समय सिद्ध नहीं किया जा सकता जब चेतना न हो।

जब व्यक्ति को यह निश्चय होता है कि उससे भिन्न कोई वस्तु है, चाहे वह कुछ भी क्यों न हो, तभी उसमें उसे प्राप्त करने की इच्छा जागती है। इच्छा के उदित होने का तथ्य ही यह सिद्ध करता है कि उसने स्वयं को द्रष्टा और अपने से भिन्न अन्य सभी वस्तुओं को दृश्य समझना प्रारम्भ कर दिया है। यही कारण है कि सिद्ध-पुरुष में अपने पर पूर्ण नियंत्रण होने के कारण पूर्ण निष्कामता सिद्ध हो जाती है। ऐसा पुरुष ''एकमेवाद्वितीय'' का साक्षात्कार कर चुका होता है; अतः ऐसे पुरुष की इच्छा के लिये कोई भिन्न पदार्थ नहीं होता।

सत्य और प्रतीति :

अब स्क्रू को उलटा घुमा कर खोलना है। विकास और अध्यास की प्रक्रिया के बाद कारण की ओर प्रत्यावर्तन की, संकोचन अथवा अपवाद की, प्रक्रिया होती है। स्थूल से सूक्ष्म तक, सूक्ष्म से कारण तक और उसके बाद एक लम्बी कूद और इस सभी के पार्श्व में विद्यमान नित्य आत्मा की प्राप्ति होती है। लेकिन सबसे पहले एक तैयारी का, सफाई और धुलाई का जीवन यापन करना पड़ता है, क्योंकि जब तक मन में अपवित्रता रहेगी, तब तक दर्पण चैतन्य के प्रकाश को पूर्ण रूप से तथा अच्छी तरह प्रतिबिम्बित नहीं कर सकेगा। और हमारा मन ही वह दर्पण है। इसीलिए गन्दगी और मलिनता की उन सभी परतों को दूर करना आवश्यक है, तभी मन प्रकाश को ठीक से पुनः प्रतिबिम्बित कर सकेगा। यह अस्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित प्रकाश ही हमारे लिये अभी सारी समस्याएँ पैदा करता है। वह सत्य को विकृत कर भ्रम और विमोह उत्पन्न करता है।

वेदान्ती विकास को जीवन की एक अवस्था के रूप में स्वीकार करता है, लेकिन उसे चरम लक्ष्य कभी नहीं मानता। उसके अनुसार यह विकास भी एक प्रतीति, माया ही है, वह चरम सत्य कभी नहीं है। अतः जब हम विकास की बात करते भी हैं, तो वह केवल सापेक्ष दृष्टि से करते हैं, उसे यथार्थ सत्य मानकर नहीं। पूर्ण आत्मा में विकास जैसी कोई चीज है ही नहीं। आत्मा समस्त परिवर्तनों का निर्विकार साक्षी है।

सारी समस्या यह है कि हमारे लिये प्रतीति सत्य हो गई है, और सत्य असत्य हो गया है। सचमुच यह बड़ी हास्यास्पद स्थिति है। लेकिन हम मूर्ख जो ठहरे। हमें दुःख और कष्ट तथा अनन्त भ्रान्ति-विनाशों के रूप में इसकी कीमत चुकानी पड़ती है। सभी मिथ्या तादात्म्य भंग होंगे। और इससे प्रारम्भ में कष्ट होता है। धन्य है ऐसा दुःख, जो मुक्ति और आनन्द का अग्रदूत हो। संसार का अंधकार आत्मा के द्वारा प्रकाशित होता है, लेकिन हम उसका वास्तविक स्वरूप नहीं जानते, और उसके धूमिल प्रतिबिम्बित प्रकाश में जीते और कार्य करते हुए भी हम उसका प्रकाश नहीं देख पाते।

अद्वैत वेदान्त में क्रम-विकास का अर्थ किसी वस्तु का कोई अन्य रूप धारण करना नहीं है। यह दूध के दही बनने जैसा नहीं है। ऐसा होने पर उसका वास्तविक स्वरूप बदल जाएगा। लेकिन यह रस्सी के साँप बनने जैसा है। ऐसे में रस्सी में कोई यथार्थ परिवर्तन नहीं होता। लेकिन जब रस्सी में साँप का भ्रम होता है, तब सच्चे साँप के साथ की भय आदि सारी समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। इसी तरह असत्य को सत्य समझ कर हम अनन्त कठिनाईयाँ झेलते हैं।

जब तक हम जागृत नहीं होते, जब तक आत्मा का दर्शन नहीं होता तब तक जगत्-स्वप्न ही हमें एकमात्र सत्य प्रतीत होता है। और हमारी यह जागृत अवस्था भी स्वप्नावस्था से अधिक सत्य नहीं है। दोनों ही समान रूप से असत्य है।

'असत्य' शब्द का गलत अर्थ नहीं लगाना चाहिए। रस्सी के स्थान पर सर्प का दिखाई देना, इस दृष्टि से मिथ्या नहीं है कि सर्प की प्रतीति के लिये वहाँ कुछ है ही नहीं। रस्सी उस अधिष्ठान का कार्य करती है, जिस पर सर्प की धारणा का आरोप किया जाता है। माया शून्य की तरह अलीक या भ्रम नहीं है। अविकारी ब्रह्म इस विविधतापूर्ण जगत् के रूप में कैसे प्रतीत होता है, इसे समझाने के लिये इस शब्द का प्रयोग किया गया है। बौद्धों के निर्वाण का भी अर्थ शून्य नहीं है। विनाश शब्द

का प्रयोग इन्द्रियजन्य अनुभव तथा दु:ख के अन्त के अर्थ में किया गया है। किसी वस्तु के विनाश या विलय के ज्ञान के लिये भी एक चैतन्य साक्षी की आवश्यकता है, और वह आत्मा है। बिना किसी चैतन्य के रहते विलय का ज्ञान नहीं हो सकता। यदि निर्वाण में बुद्ध का विनाश हो गया होता, तो वे इतने वर्षों तक उपदेश कैसे देते? वेदान्त एक प्रकार का अनुभवतीत यथार्थवाद है, लेकिन जिसमें सामान्यत: यथार्थवाद और आदर्शवाद से समझे जाने वाले सिद्धान्तों के लिये स्थान है।

सत् और चित् :

सत् उसे कहते हैं, जो अतीत में था, जो वर्तमान में है, तथा जो अपने स्वरूप के परिवर्तन के बिना अथवा विकार को प्राप्त हुए बिना भविष्य में भी बना रहेगा। इस शर्त को पूरी न करने वाले सभी पदार्थ असत् कहलाते हैं। असत् पदार्थ पूर्ण रूप से अस्तित्वहीन भले ही न हो, लेकिन कोई वस्तु कुछ समय तक रहे, उसके बाद लीन हो जाय या परिवर्तित हो जाए, तो असत् की श्रेणी में आयेगी। और यह बात बिना अपवाद के संपूर्ण प्रतीयमान जगत् पर लागू होती है। कुछ वस्तुएँ पूर्ण रूप से असत् हैं, तथा किसी भी परिस्थिति में कभी नहीं हो सकती : यथा आकाशदुर्ग, शशश्रृंग, वन्ध्यापुत्र इत्यादि। इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं निकलता और उनके अनुरूप कोई बाह्य-पदार्थ नहीं होता। हम आकाश में एक दुर्ग की कल्पना अवश्य कर सकते हैं, लेकिन उसमें रह नहीं सकते। इनसे भिन्न ऐसी वस्तुएँ हैं, जिन्हें व्यावहारिक सत्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। ये वस्तुएँ चरम सत्य के साक्षात्कार के उपरान्त ही असत्य सिद्ध होती हैं। यह दृश्यमान प्रातिभासिक जगत् व्यावहारिक सत्य की श्रेणी में आता है, और उस उच्चतम ज्ञान के उदय तक बना रहता है, जिसका प्रकाश इस प्रतीयमान जगत् की छाया तक को, हमारे अपने प्रतीयमान अस्तित्व तक को दूर कर देता है। चरम ज्ञानोदय के बाद जब ब्रह्मज्ञपुरुष दृश्य जगत् के स्तर पर उतरता है, तो वह इस समग्र प्रतीयमान जगत् को देखता तो है, लेकिन उसे छाया मात्र समझता है, तथा उसे पारमार्थिक सत्ता विहीन असत् जानता है।

हमारे व्यक्तित्व में पारमार्थिक सत्य तथा व्यावहारिक सत्य की चेतनाएँ मिल गई हैं। अत: हमारी सामान्य चेतना, विशुद्ध चेतना तथा सापेक्ष दृग्-दृश्य-चेतना का मिश्रण है। और जिस मात्रा में हम दृश्य जगत् को हटाने में समर्थ होंगे, उसी मात्रा में हम आध्यात्मिक बनेंगे। हमारे संसार के अनुभव तथा आत्मा अथवा ब्रह्म के अनुभव के बीच की कड़ी दृश्य-जगत् की ओर नहीं, बल्कि उस तत्त्व की ओर है, जो सभी परिस्थितियों में, सापेक्ष और निरपेक्ष दोनों ही स्थितियों में, विद्यमान रहता है। हमारी अहं-चेतना पूरी तरह असत् नहीं है लेकिन उसमें एक सत् और एक असत् तत्त्व रहता है। और असत् को उस एक सत् के साक्षात्कार से दूर करना चाहिए, जो विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होता है।

सर्वप्रथम साधक विविधता देखता है, और उसके बाद नानात्व में एक को देखने का प्रयत्न करता है। पर नानात्व और एकत्व दोनों ही सत्य प्रतीत होते हैं। और प्रगति करने पर वह अनुभव करता है कि ''एक'' ही सही माने में सत् है, और दृश्य जगत् की सत्ता गौण है, तथा वह ''एक'' के अस्तित्व पर पूरी तरह निर्भर है।

वेदान्त का प्रारम्भ आत्मा के स्वरूप अथवा अहं-बोध के अनुसंधान से होता है। उसकी परिसमाप्ति ''एकमेवाद्वितीय'' की उपलब्धि में होती है। इन दो अवस्थाओं के बीच चेतना की बहुत-सी मध्यवर्ती अवस्थाएँ होती हैं। साधक का अहं-बोध विस्तारित होता जाता है, और अन्त में वह संपूर्ण विद्यमान जगत् को परिवेष्टित कर लेता है। उसकी जगत् के प्रति धारणा भी तदनुरूप परिवर्तित होती जाती है। आत्मा, जगत् और ईश्वर को पृथक् करने वाली रेखाएँ अधिकाधिक अस्पष्ट होती जाती हैं, और अन्त में परमात्मा की प्रभा समग्र अस्तित्व को परिव्याप्त कर लेती है।

*

वीरमदे सोनगरा

– गोविन्दसिंह डाँवरा

क्षत्रिय जाति संसार भर में एक महान कौम रही है। उनके अनोखे त्याग, बलिदान, तपस्या, दानवीरता, शौर्य व वीरता के कारण लोगों को कलम उठाकर उनका बखान करने के लिये मजबूर होना पड़ा। क्षत्रिय के अलावा संसार में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता है कि कोई वीर सिर कटने के बाद लड़ा हो। कई वीरों की आज लोग दो-दो जगह पूजा करते हैं। इसके अलावा भी कई ऐसे वीर हुए हैं जिन्होंने अपनी आन-बान-शान के लिये सब कुछ न्योछावर कर दिया। यह वही क्षत्रिय जाति है जिसके पूर्वजों ने इस समाज, देश व धर्म के लिये अनोखे बलिदान किये। आज उनकी वीरता की कहानियाँ सुनने से लोगों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

जिस समय अल्लाद्दीन खिलजी दिल्ली का बादशाह था उस समय जालोर के शासक कान्हड़दे चौहान थे। कान्हड़दे का पुत्र था वीरमदे सोनगरा। वह पट्टा चलाने में माहिर था। कान्हड़दे के पास उस समय एक मुस्लिम युवक (पंजू पायक) रहता था। वह वीरमदे के हम उम्र का था तथा ये दोनों पट्टा चलाने में बेजोड़ थे। लेकिन बाद में बादशाह अल्लाउद्दीन ने पंजू पायक को अपने दरबार में रख लिया। सभी मुस्लिम बहुत प्रसन्न थे कि एक पट्टा चलाने वाला वीर हमारे दरबार में है। पंजू पायक ने दिल्ली में जाने के बाद खूब वाह-वाही लूटी। कई लोगों को उसने पराजित किया। बादशाह खिलजी हर जगह उसकी वीरता का बखान करता रहता था। एक दिन बादशाह ने पंजू पायक को पूछा ''अब तुम ही बताओ क्या तेरी बराबरी का कोई पट्टा लड़ने वाला है।'' तब पंजू पायक ने कहा-''जब मैं जालोर रहता था उस समय वहाँ का राजकुमार (वीरमदे) जो मेरी उम्र का ही था, वह जरूर मेरी बराबरी का युद्ध करने वाला रहा है।'' तब बादशाह खिलजी ने जालोर के शासक कान्हड़दे को यह संदेश पहुँचाया कि राजकुमार (वीरमदे) सहित हमारे दरबार में पधारें। कान्हड़दे व उनके छोटे भाई रांणगदे व राजकुमार (वीरमदे) सहित कई लोग दरबार में उपस्थित हुए। बादशाह ने राजकुमार से पट्टे की लड़ाई का आग्रह किया। वीरमदे सोनगरा सहमत हो गया। कान्हड़दे का पड़ाव गढ़ से काफी दूर रखा। खिलजी के रनिवास के चौगान में यह पट्टे की लड़ाई हुआ करती थी। लोग रनिवास के चौगान में एवं गढ़ की दीवारों पर बैठकर इस अनोखे युद्ध को देखा करते थे। कई दिन निकल गये परन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला अर्थात् न कोई हारता व न कोई जीतता।

एक दिन सुबह राजकुमार (वीरमदे सोनगरा) पड़ाव स्थान से जल्दी युद्ध करने जा रहा था कि बीच में एक बाजीगर (तीतरों को पालने वाला) दो तीतरों को लड़ा रहा था। वीरमदे ने रुक कर उस लड़ाई को ध्यान से देखा। उस समय एक तीतर के पंजे में लोहे की धार दार पत्ती बांधी हुई थी। उस तीतर ने मौका देखकर दूसरे तीतर की गर्दन पर जोर से पंजे की मारी जिससे दूसरे तीतर की गर्दन कट गई। तब वीरमदे उस तीतर से शिक्षा लेकर दौड़ा-दौड़ा एक लोहार के पास गया, उसने उससे कहा कि मेरी पगरखी के नीचे एक धार-दार छुरा लगा दे। लोहार ने वीरमदे के पगरखी के नीचे छुरा लगा दिया। तब वीरमदे रनिवास की चौगान में हमेशा की भाँति पट्टे का युद्ध करने पहुँचा। मुस्लिम व अन्य हजारों दर्शक बैठे बैठे इस अनोखे युद्ध को देख रहे थे। उसमें दिल्ली के बादशाह अल्लाउद्दीन खिलजी की पुत्री फीरोजा भी बैठी हुई थी। वीरमदे ने पंजू पायक को अपने पैर से वार करके मार दिया।

बादशाह की बेटी फीरोजा वीरमदे पर मुग्ध होकर उसके साथ शादी करने का दृढ़ संकल्प ले बैठी। लाचार होकर बादशाह को बात माननी पड़ी। वीरमदे ने ऊपरी मन से बात मानकर कहा कि बारात जालोर से आयेगी।

बारात का खर्चा 3 करोड़ 12 लाख रूपये कान्हड़दे को दिये तथा 3 वर्ष का समय दिया। रांणिगदे (कान्हड़दे का छोटा भाई), आशा चारण व एक खवास को ओल (बन्धक रूप) में रखा।

कान्हड़दे व वीरमदे को धन देकर जालोर शादी की तैयारी हेतु भेजा। उन्होंने इस रकम से जालोर के किले की दीवारें बनानी शुरू कर दी। रांणीगदे ने बात फैलाई कि वीरमदे जालोर नहीं गया, वह तो कहीं भाग गया है। इसी दौरान वीरमदे ने बादशाह के एक मोटे भैंसे को मार गिराया, जिसकी सूचना अल्लाउद्दीन को मिली। अल्लाउद्दीन के दूत से समाचार मिला कि जालोर में युद्ध की तैयारियाँ हो रही हैं। तब बादशाह ने रांणिगदे को बेड़ियाँ पहनाने का आदेश दिया। तग्गा मल्लिक बेड़ी लेकर रांणिगदे के डेरे में गया। तब आशा चारण ने रांणिगदे से कहा-

रणका रुणझणकेह, राय आंगण रमियो नहीं।
तो पहरिस केम पगेह, पड़ नेउरी वणवीरउत।।

अर्थात्-हे रांणिगदे ये बेड़ियाँ रुन झुन करके झनक रही है, तू तो अभी बादशाह के आंगण में खेला ही नहीं। वणवीर के पुत्र क्या इन बेड़ियों को पहिनेगा।

इस पर रांणिगदे ने अफीम का पान कर अपने तेज अश्व झींथड़े पर सवार होकर भागने की तैयारी की तब तग्गा ने कुछ अपशब्द कहे-इस पर आशा चारण ने फिर एक दोहा कहा,-

तगा तगाई मत करै, बोलै जीभ संभाळ।
नाहर अर रजपूत नै, रेकारे री गाळ।।

रांणिगदे कटारी के वार से तग्गा को मारकर वहाँ से भाग निकला। पीछे कोलाहल से आकाश गूंज उठा। बादशाह पूछ रहा है-

सुध पूछै सुरताण, कोलाहल के हो कटक।
कै हाथी ठांणै उथंडियौ, के रीसवीयौ रांणै।।

यह कैसा कोलाहल है कोई हाथी ठांणै से छूट गया है या रांणिगदे गुस्से में हो गया है। रांणिगदे के पीछे फौज भेजी गई। जब रांणिगदे सोजत से आगे निकला तो एक वृद्ध स्त्री ने बताया कि तू तग्गा को मारकर आया है, तेरे पीछे बादशाह की सेना आ रही है। इस पर रांणिगदे ने अपने घोड़े को लताड़ा कि तेरे से पहले यह खबर यहाँ आ पहुँची। घोड़ा झींथड़ा देववंशी था-फटकार सुनते ही धराशायी हो गया-तब वृद्धा ने कहा कि मैंने तो यह तांत्रिक विद्या से जाना है तूने घोड़े को क्यों धिक्कारा। वहाँ झींथड़े घोड़े का स्मारक बनाया गया और उस स्थान पर आबाद गाँव आज भी झींथड़ा है।

रांणिगदे जालोर पहुँचा। बादशाही सेना ने जालोर का घेरा डाला। लम्बे समय तक घेराव रहा। किले में रसद सामग्री की कमी आ गई थी तो दुर्ग रक्षकों ने एक युक्ति सोची-कुत्ती के दूध की खीर बनाकर पातलों में डालकर वे पातलें किले के नीचे गिरायी गई। इस पर बादशाह ने सोचा कि जालोर दुर्ग में अभी तक रसद बहुत है। अत: वह निराश होकर वापिस दिल्ली को रवाना हो गया।

किले में सोनगरों ने भोजन का आयोजन किया। वीरमदे का बहनोई बीका दहिया भी वहीं था। इससे कुछ वर्षों पूर्व दो दहिया राजपूतों को मृत्युदण्ड दिया गया था जिनके कंकाल पेड़ से लटक रहे थे। हवा के झोंकों से वे कंकाल परस्पर आमने-सामने टकरा रहे थे। नशे में धुत वीरमदे ने बीका दहिया को उन कंकालों की ओर इशारा करके कहा-''आज दहिया भूंडो मतो करे है। यह गढ़ तुड़वायेंगे।'' बहनोई ने कहा-''कुँवरजी मृतकों से ऐसी मजाक क्या कर रहे हो।'' तब वीरमदे ने और ताना मारा कि ''आप तो उन मृतकों के जीवित भाई हैं। आप उन मृतकों की मदद करें।'' दहिया बीका क्रोधित होकर वहाँ से उठ गया और अश्वारूढ होकर शाही सेना के पीछे भागा-बादशाह को किले का पूरा भेद बताकर फौज वापिस किले पर ले आया। कमजोर बुर्ज का पता लगाने के लिये रातों-रात राइयाँ किले के चारों ओर बोई गई। उस रात सैकड़ों मण राइयें खरीदी गई। मुँह माँगे पैसे दिये गये। सवेरे गाडों के भराव राइयें जालोर पहुँची। तभी से कहावत चली-

''राइयों रा भाव (तो) रातै गिया।''

बीका दहिया जब अपने घर पहुँचा तो उसकी पत्नी को अपने पीहर (जालोर) पर शत्रु चढ़ा लाने पर अपने पति पर बहुत गुस्सा आया और उसने दहिया बीका के सिर पर तासली की जोर से मारी जिससे बीका दहिया मर गया।

बादशाह ने किला तोड़ दिया-कान्हड़देव ने शाका किया। सम्मुख रण में काम आया। वीरमदे ने भी शाका किया। वह जब घेराबंदी में आ गया तो उसने अपने पेट में कटार खा ली और ऊपर से पेट को पट्टे से बांधकर घोड़े से उतर कर जूझने लगा। वीरमदे को बन्दी बना लिया गया। बादशाह ने वीरमदे से कहा कि अभी तक समय है-शादी कबूल कर राजपाट भोगो। इस पर वीरमदे ने दृढ़ता से उत्तर दिया-

माता लाजै भटियाणी, कुल लाजै चौहाण।
जे परणीजूं तुरकणी, तो उल्टा ऊगै भाण।।

अत: वीरमदे को बन्दी रूप में जबरदस्ती से निकाह पढ़ाने के लिये काजी को बुलाया गया, शादी की तैयारियाँ होने लगी। वीरमदे को स्नान कराने के लिये सैनिकों ने उसकी कमरबन्द खोली, यकायक उसकी आँतें बाहर आ गई और उसने सदा के लिये आँखें मूंद ली।

फिरोजा ने कहा-''वीरमदे का सिर हाजिर किया जावे मैं उसे गोद में लेकर हिन्दू रीति से सती होऊँगी। वह मेरा पूर्व जन्म का पति है।''

सिर काटकर लाया गया परन्तु फिरोजा को देखकर थाली में रखा सिर घूम गया। फिरोजा ने कहा-''कुँवरजी इमसें मेरा क्या दोष है-मैं तो आपको भव-भव का भरतार मानती हूँ। आपने रूठना अभी तक नहीं छोड़ा-मैं तो फेरे खाकर सती होऊँगी-मेरी इच्छा को पूर्ण करें।''

कहा जाता है कि फिरोजा ने वीरमदे के शीश की सात दिन तक वंदना की। तब मस्तक स्वत: सीधा हुआ। शाहजादी ने फेरे खाये और फिर गोदी में सिर लेकर सती हो गई।

भो भो रा भरतार हो, शिव सा पूजन हार।
रूठा किंकर कंवर जी, करण हार करतार।।
बयण सुणंतां कंवर रो, हड हड हंसियो शीश।
शहजादी सत चाढ़ियो, राख शीश पर ईस।।
शीश फिर्‌यो दिन सात में, बळसूं थांरी लार।
सिर क्यूं धुंणै बीरमा (तूं) भव-भव रो भरतार।।
धारी बेड़ी धूड़ री, वीरमदे चहुवांण।
झड़ पड़ियो जालोर में, मरद न तजियो मांण।।

पृष्ठ 6 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

जब आपको भूख लगे तो उसका एक समय है, एक व्यवस्था है। भूख लगने पर हम न खाएँ, यहाँ जब खिलाया जाता है तब खाते हैं, यह मर्यादा है। जब पिलाया जाता है तब पीते हैं। जब हमको प्यास लगे और दस आदमी खड़े हैं। तो श्रेष्ठ व्यक्ति वो है जो पहले दूसरों को पिलाता है, फिर खुद पीता है। इस प्रकार की श्रेष्ठता का अर्जन हमको करना है। वो नहीं कर पाए तो बहुत सारे शिविर हमारे किए हुए बेकार चले गए। उद्दण्डता हमको छुए नहीं, अनुशासनहीनता हमको छुए नहीं इसके लिये थोड़ा कष्ट सहन करना पड़ता है। यह एक तपस्या का मार्ग है, साधना का मार्ग है। यह समाज को सुधारने का नहीं अपने आपको सुधारने का मार्ग है। समाज सुधारा नहीं जाता समाज की वन्दना की जाती है। हम हमारे समाज की, हमारे देश की किस प्रकार से वन्दना कर सकते हैं। उसका प्रशिक्षण यहाँ मिलेगा, उसका हम पालन करेंगे तो निश्चित रूप से हम श्रेष्ठता की ओर कदम बढायेंगे। यही होगी इस शिविर की हमारे लिये उपयोगिता। अत: हम अपने शरीर का सदुपयोग करें। भगवान ने कितना सुन्दर शरीर दिया है और इसके साधन दिए हैं। मन दिया है, बुद्धि दी है, चित्त दिया है, इन्द्रियाँ दी हैं, कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ उन सबका सदुपयोग करें। तो निश्चित रूप से हमारा कल्याण होगा। क्षत्रिय युवक संघ आज के मंगल प्रभात में यही संदेश देता है और हमारे कल्याण की कामना करता है।

*

ध्यान योग की श्रेष्ठता

– *स्वामी वेदानन्द सरस्वती*

गीता के प्रणाम हैं –

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्भिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन।।
श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।।
ध्यानेनातत्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।

अर्थात्– तपस्वियों से योगी श्रेष्ठ है। ज्ञानियों से भी योगी अधिक श्रेष्ठ माना जाता है। तथा कर्मयोग से भी ध्यानयोग श्रेष्ठ है।

कर्म के अभ्यास की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ होता है। और ज्ञान की अपेक्षा ध्यान श्रेष्ठ होता है। ध्यान से कर्मफल त्याग श्रेष्ठ होता है। त्याग से शान्ति प्राप्त होती है। यहाँ यह नहीं समझना चाहिये कि ध्यान के बिना ही कर्मफल का त्याग प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुतः ध्यानयोग से ही त्याग की योग्यता उत्पन्न होती है। ये पूर्वापर है। ध्यान पूर्व है और कर्मफल त्याग अपर है। कर्मफल त्याग ध्यान का परिणाम है।

कुछ लोग ध्यान के द्वारा अपनी आत्मा में परम पुरुष के दर्शन करते हैं। दूसरे ज्ञान योग से उसका दर्शन करते हैं। तथा अन्य कर्म-सन्यास द्वारा उसे पाते हैं।

इन प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि ध्यानयोग आत्मदर्शन का श्रेष्ठतम साधन है।

निष्काम कर्मयोगी की भावनाएँ :

हम कर्म करते हैं लेकिन कर्मफल हमारे अधीन नहीं होता। कर्म का फल हमें विश्व की विशाल शक्ति के हाथों दिया जाता है। हम कार्य करने में स्वतंत्र हैं। हमारे कार्यों का निर्णय उसके द्वारा ही होता है। जो भी फैसला हमारे हित के लिये होता है वैसा ही वह निर्णय देता है। इसलिये निष्काम कर्म योगी कभी निराश नहीं होता है। अपने कर्म के बदले में उसे जो भी फल प्राप्त होता है उसे वह पारितोषिक समझकर ही स्वीकार करता है उसे पूर्ण विश्वास होता है कि परमेश्वर की ओर से जो भी फल सफलता या असफलता, दण्ड या उपहार, दुःख या सुख के रूप में उसे मिलता है वह उसे प्यार करने वाले के द्वारा दिया गया है और उसमें ही हमारा हित छिपा हुआ है। वह बड़े प्रेम के साथ हमें कल्याण पथ पर ले जा रहा है।

ज्ञानी व अज्ञानी सभी व्यक्ति अपनी-अपनी प्रकृति के वशीभूत होकर ही कार्य कर रहे हैं। निष्काम कर्मयोगी कर्म का सेवन करता हुआ भी इन्द्रियों के वश होकर राग-द्वेप में नहीं फंसता। एक खिलाड़ी की भावना से वह कार्य में प्रवृत्त होता है। कर्म को अपना कर्त्तव्य समझकर पूरा करता है फल की आसक्ति में नहीं बंधता। अतः निष्काम कर्मयोगी के कर्म संस्कार भी शेष नहीं रहते। यह ध्यान योग की उच्च अवस्था का प्रतिफल है।

सन्ध्या ध्यानयोग की सर्वाङ्गपूर्ण प्रक्रिया :

जो भी व्यक्ति ध्यानयोग का अभ्यास करना चाहता है उसे सर्वप्रथम सन्ध्या के मंत्रों को ठीक-ठाक उच्चारण सहित कण्ठस्थ करना चाहिये। और मंत्रों के अर्थ भी स्मरण कर लेने चाहिये। दोनों समय की सन्धि-वेलाओं में नित्यप्रति नियम पूर्वक अर्थ सहित सन्ध्या के मंत्रों का पाठ करें। फिर एक-एक मंत्र के अर्थों का सूक्ष्म चिंतन करते हुए ध्यानावस्थित होकर उस महाप्रभु की भक्ति में गोता लगायें।

सन्ध्या शब्द स्वयं इस बात पर प्रकाश डाल रहा है कि मंत्र-पाठ कर लेना मात्र ही सन्ध्या नहीं है। सम्यक् ध्यान का नाम सन्ध्या है।

सन्दधाति यस्यां वेलायां सा सन्ध्या। अथवा
सम्यक् ध्यायन्ति परं ब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या।।

अर्थात्– दिन रात की सन्धि वेला का नाम सन्ध्या है। उस समय ब्रह्म का ध्यान किया जाता है। आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है। इसलिये उसे सन्ध्या कहते हैं।

सन्ध्या सत्य के अनुसंधान की संपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करती है। सन्ध्या में जीवन का समग्र दर्शन है। कितने आश्चर्य की बात है कि व्यक्ति सारी दुनियाँ की खोज खबर करता फिरे किन्तु अपने आप से अपरिचित बना रहे। सत्य हमारे अन्दर छिपा हुआ है किन्तु हम उससे बेखबर हैं। परम सत्य का दर्शन सन्ध्या का प्रयोजन है। सन्ध्या में समय के बन्धन टूट जाते हैं। घड़ी देखकर सन्ध्या नहीं होती। अपने प्रियतम का समय मिलने का है-यह घड़ी नहीं बता सकती। वह तो अन्त:करण की प्यास बतलाती है। जब अन्त:करण में प्रियतम से मिलन की तड़फ जाग उठे तो बस वही सन्ध्या का समय है। प्रेम, प्रेम को खींचता है। जब हम उस प्रभु के प्रेम में दिवाने हो जाते हैं तो वह भी हम से प्रेम करने लगता है। हम उसकी ओर दो कदम रखते हैं, तो वह हमारी ओर दौड़ कर आता है। प्रेम बड़ी-बड़ी दीवारों को तोड़ देता है। पर्वतों को लांघ जाता है। प्रेम में अद्भुत शक्ति है। उसकी शक्तियों का आकलन बहुत कठिन कार्य है।

सन्ध्या से अनुभूतियों को जगाया जाता है। उन्हें सूक्ष्म किया जाता है। यह भी आश्चर्य की बात है कि धार्मिक कहे जाने वाले लोग भी आत्मा-परमात्मा जैसे प्रश्नों का हल ध्यान से नहीं शब्दों से ढूंढना चाहते हैं। आत्मा-परमात्मा को शास्त्रों में खोजते हैं। तर्क-वितर्क के द्वारा उन्हें पाना चाहते हैं। आत्मा-परमात्मा शब्दातीत हैं। वे इन्द्रियातीत हैं। उन्हें शब्दों या तर्कों में नहीं खोजा जा सकता।

आत्म-तत्व को पाने का, अपनी अन्त:चेतना को जगाने का एक मात्र उपाय ध्यान है। ध्यान में स्वयं की, आत्मा की अनुभूति होती है। सन्ध्या में बैठकर शब्दों से परे, तर्कों से परे अपनी सहज अनुभूति को जगायें। स्वयं का अनुभव करें। उसका साक्षात्कार ध्यान के द्वारा ही होता है। जब स्वयं का प्रत्यक्ष हो जाता है, तब शब्द प्रमाण नाकाम साबित हो जाता है। प्रत्यक्ष की भूमि में शब्द का प्रवेश नहीं है। अनुभव की सच्चाई अपनी सच्चाई बन जाती है। किसी के कहने अथवा लिख देने से शब्द-प्रमाण प्रत्यक्ष-प्रमाण नहीं बन जाता। प्रत्यक्ष के लिये ध्यान आवश्यक है। देखी हुई और सुनी हुई बातों में बहुत बड़ा अन्तर है।

पूजापाठ और प्रार्थनाएँ :

जो व्यक्ति ईश्वर में विश्वास करता है, वह अपने दैनिक जीवन में कुछ न कुछ पूजा-पाठ करता ही है। ईसाई लोग गिरजाघरों में जाकर ईसामसीह से दुआयें माँगते हैं। मुस्लिम लोग मस्जिदों में जाकर नमाज पढ़ते हैं। रोजे रखते हैं। सिख लोग गुरुद्वारों में जाते हैं। हिन्दु लोग मन्दिरों में जाते हैं। धूप-दीप करते हैं। मूर्तियों को भोग लगाते हैं। मालाएँ जपते हैं। गीता, रामायण आदि का पाठ करते हैं। तिलक लगाते हैं। प्रार्थनाएँ करते हैं। कीर्तन करते हैं। ये सभी कार्य ईश्वर भक्ति के नाम पर किये जाते हैं। ये सब कार्य करते हुए मानव के हृदय में यही भावना रहती है कि हमारे द्वारा किये गये पूजा-पाठ से ईश्वर प्रसन्न होकर हमें मनोवाञ्छित फल प्रदान करेंगे। मन्दिर मस्जिद में जाकर थोड़ी देर के लिये कुछ शब्दों को दोहरा लेने से, मूर्तियों पर जल चढ़ा देने या उसके आगे घुटने टेक कर सिर झुका देने से क्या ईश्वर प्रसन्न हो जाता है? यदि इतने मात्र से ईश्वर प्रसन्न हो जाता और हमें मुँह माँगी मुराद मिलने लगती तो आज कोई भी आदमी दुनियाँ में दु:खी दिखायी न देता। तो क्या पूजा-पाठ और प्रार्थनाएँ नहीं करनी चाहिये। क्या उनका कोई मूल्य नहीं है? प्रार्थना का क्या अभिप्राय है-पहले इसको समझें। स्वामी सत्यप्रकाश जी के शब्दों में-

ईश्वर हम से जीवन भर पितृवत् स्नेह करता है। जो हम से पितृवत् प्यार करता है, क्या हमें भी उससे प्यार नहीं करना चाहिये? वह हमारा सच्चा मित्र है। हमें वह कभी नहीं भुलाता। हमारे और उसके बीच में पिता पुत्रवत् प्यार के सम्बन्ध हैं। वह हमारे हृदय में निवास करता है। जब कभी हम अपने रास्तों से फिसलने लगते हैं तो वह हमारे हृदय के अन्दर बहुत प्यार भरी आवाज में हमें सत्प्रेरणा करता है। उसकी वाणी बहुत बुद्धिपूर्ण होती है। जो हमें सदा ही अपनी प्यार भरी आवाज से हमारे हित का उपदेश करता हो, तो क्या उसके शब्दों

को हम अनसुना कर सकते हैं? उसकी आवाज को सुनना और उसके आदेशों का पालन करना ही ईश्वर पूजा है।

कुछ चुने हुए शब्दों या गीतों को यंत्रवत् दोहरा देना मात्र प्रार्थना नहीं हो जाती। प्रार्थना हमारे हृदय की पुकार होती है। प्रार्थना कोई भीख माँगना नहीं है। प्रार्थना हृदय से निकलनी चाहिए। एक प्रभु भक्त का जीवन अन्दर और बाहर से पूर्ण पवित्र होना चाहिये। पवित्र हृदय से की गई प्रार्थनाएँ अवश्यमेय पूर्ण होती हैं।

कुछ भजनों और गीतों को गाकर आप अपना आसन छोड़कर खड़े हो जायें और अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लें, तो इतने मात्र से प्रार्थना का प्रयोजन पूरा नहीं हो जाता। कोई भी प्रार्थना अपनी पूर्णता या सफलता के लिये एक सुनिश्चित कार्यक्रमानुसार प्रयत्न विशेष की अपेक्षा करती है। प्रार्थना के शब्दों के साथ ही किसी व्यक्ति का कर्त्तव्य समाप्त नहीं हो जाता अपितु प्रार्थना के साथ उसके ऊपर कुछ और जिम्मेदारियाँ आ जाती हैं। प्रार्थना अन्त:करण की भूमि में शुभगुणों का बीजारोपण है, जो अपने अन्दर फलित और पुष्पित होते हैं। अन्त:करण में बोये हुए शुभगुणों के बीज अँकुरित होकर विकसित होते हैं किन्तु उनके विकास के लिये समुचित रक्षण और पोषण की आवश्यकता होती है। और उसके लिये एक सुनिश्चित कार्यक्रम की अपेक्षा होती है।

प्रात:काल की गई प्रार्थना पूरे दिन भर के कार्यक्रम की एक प्रतिज्ञा होती है। और सायं काल की प्रार्थना में दिनभर के कार्यक्रम का लेखा-जोखा होता है। जिसमें प्रार्थी यह देखता है कि मैंने अपने कर्त्तव्यों का कितने अंशों तक पालन किया है। कोई भी प्रार्थना प्रार्थी को हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाने के लिये नहीं कहती। प्रार्थना एक सक्रिय जीवन जीने के लिये प्रेरित करती है। यह हमेशा के लिये याद कर लें कि परमात्मा आपकी प्रार्थनाओं को आप ही द्वारा पूरा कराता है। शायद ही वे कभी दूसरों के द्वारा पूरी होती हैं। वह तुम्हारी कामनाओं को किस ढंग से पूरा करे-इसका तुम्हारी अपेक्षा उसे अधिक ज्ञान है। तुम्हारी समस्याओं के समाधान के लिये वह, तुम्हें अपने आप में समर्थ बनाता है। किसी समस्या के समाधान की अपेक्षा यह अधिक महत्वपूर्ण बात है कि तुम स्वयं समस्याओं के समाधान के लिये समर्थ हो जाओ। समर्थ व्यक्ति एक ही नहीं हजारों समस्याओं का समाधान कर सकता है। और वह सब परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान है। वह दयालु और न्यायकारी है। और जब हम परमात्मा को इन नामों के द्वारा पुकारते हैं, तो हम एक प्रकार की प्रतिज्ञा करते हैं कि परमात्मा के ये गुण हम अपने जीवन में अपनायें।

दूसरे प्राणियों से मानव को पृथक् करने वाली उसकी बुद्धि ही होती है, जो उसे परमात्मा की ओर से मिली है। अत: प्रार्थना में उस बुद्धि को शुद्ध और पवित्र बनाने की माँग का बड़ा महत्त्व है। पवित्र बुद्धि ही जीवन में शुभ-अशुभ का निर्णय करती है। मनुष्य प्राय: करके अपनी भावनात्मक दृष्टि से कमजोर है। विषयों की चकाचौंध में वह अन्धा हो जाता है। किन्तु पवित्र बुद्धि उसे विषयों की आन्धी से बचाकर परिस्थितियों पर विजय दिलाती है। मानव स्वतंत्र है अत: अपने व्यवहार के प्रति वह नैतिक जिम्मेदार है। स्वतंत्रता पवित्र बुद्धि से ही मिलती है। उसी से व्यक्ति अच्छे और बुरे का निर्धारण करता है।

हमें अपने प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये -

असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमय।।

हे दयालु देव! आप हमें असत् से सत् की ओर, अज्ञानान्धकार से ज्ञान-प्रकाश की ओर, तथा मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो। नाश रहित मोक्ष सुख को प्राप्त कराओ।

उपनिषद् का वचन है-

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्।।

अर्थात्- सर्व व्यापक परमात्मा ने अपनी व्याप्ति से जगत् के सभी पदार्थों को ग्रहण किया हुआ है। मनुष्य के जैसे उसके हाथ-पैर नहीं हैं फिर भी कोई पदार्थ उसकी पहुँच से बाहर नहीं है। उसके मनुष्य जैसी आँखें नहीं किन्तु संपूर्ण जगत् को देख रहा है। कान नहीं फिर भी सब प्राणियों की सुनता है। वह सारे विश्व को जानता है किन्तु उसको पूर्णता से जानने वाला कोई नहीं है। उसी परमेश्वर को पूर्ण पुरुष कहते हैं।

प्रश्न : क्या परमेश्वर प्रार्थना करने वाले के पाप क्षमा कर देता है?

उत्तर : -

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।। (गीता 5.15)

अर्थात्- परमेश्वर न किसी के पापों को ग्रहण करता है और न ही पुण्य को। मानव के अज्ञान के द्वारा उसका ज्ञान ढका हुआ है। उसी अज्ञान के कारण मानव विषयों में मोहित हो रहा है।

प्रार्थना से पाप क्षमा नहीं होते अपितु उससे प्रार्थी के गुण कर्म और स्वभाव पवित्र होकर वह सुपथगामी बन जाता है। प्रार्थी की पाप में घृणा और पुण्य कर्मों में प्रीति बढ़ जाती है। सन्मार्ग में उत्साह और सहायता ईश्वर देता है। उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर एक दिन सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्य प्रति अपने ज्ञान विज्ञान की उन्नति करते हुए व्यक्ति मुक्ति तक पहुँच जाता है। उसकी उपासना से सब दोष और दुःख अविद्या और क्लेश नष्ट होकर ईश्वर का साक्षात्कार होता है। प्रार्थना में पापों से क्षमा के लिये नहीं अपितु पाप करने में प्रवृत्ति न हो ऐसी प्रेरणा परमेश्वर से लेनी चाहिए।

पृष्ठ 8 का शेष

धर्म और शिक्षा

के लिये अनेकों कष्ट सहन करते हुए हजारों देशवासियों ने आत्म बलिदान से भारतमाता के चरणों में सर्वस्व समर्पण कर दिया, आज हम उन सभी बलिदानों को ठुकरा कर रोजी-रोटी के टुकड़ों के लिये मर रहे हैं।

हमारी भारतीय शिक्षा का लक्ष्य पूर्णतया सात्विक प्रवृत्ति को प्रश्रय प्रदान करने का रहा है। संसार में जीवित रहने का अधिकार तो सभी को है, किन्तु यह अधिकार उच्छृंखल जीवन व्यतीत करने के लिये नहीं है। हमारा लक्ष्य यह हो कि हम मानवीय सत्कर्मों का पालन करते हुए अपने धार्मिक सिद्धान्तों का कभी भी विस्मरण न करें। देखिये भूतकालीन शिक्षा अपना कितना उच्चादर्श रखती थी-

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धताद्धर्मं ततः सुखम।।

अर्थात् विद्या से नम्रता प्राप्त होती है। नम्रता द्वारा पात्रता की उपलब्धि होती है। पात्रता द्वारा ही धनार्जन किया जा सकता है। इस प्रकार के सत्प्रयास से प्राप्त किये गए धन द्वारा धर्म-सम्पादन होता है और उससे वास्तविक सुखोपलब्धि होती है।

हम उस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब देश में साम्प्रदायिकता की सीमा से बाहर रहकर भारतराष्ट्रोत्थान के लय्य से यहाँ की शिक्षा-दीक्षा का पुनर्निर्माण सरकार करने के लिये उद्यत बनेगी। जब तक धर्म के उन्नत सिद्धान्तों के साथ नये तकनीकी दृष्टिकोण का पारस्परिक समन्वय होकर शिक्षा-सिद्धान्त निर्धारित नहीं किए जाएँगे, तब तक हमारा राष्ट्र सही दिशा में प्रगति नहीं कर सकेगा। हम पूर्व-पश्चिम के भंवर जाल में ग्रसित हैं। अतः हम सब अपनी सरस्वती देवी की पूजा वेद ध्वनि से करें और संतप्त राष्ट्र के जीवन को इस नूतन क्रांति द्वारा परितोष प्रदान करें। यह तभी होगा जब हम धर्म के मार्ग पर चलकर अपने जीवन को सद्-आचरण से ओत-प्रोत कर देंगे। हमारा स्वभाव ऐसा बन जाए कि हम जो कुछ भी करें वह स्वतः ही धर्म के अनुकूल ही हो। इसके लिये हमें हमारे स्वभाव में ही धर्म को ढालना होगा। ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिये निरन्तर साधना मार्ग अपनाना पड़ेगा। धर्माचरण ही हमारा लोक और परलोक सुधारता है।

✻

मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि

– श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र'

'जीवन का उद्देश्य क्या है?' जिज्ञासा सच्ची हो तो वह अतृप्त नहीं रहती। भगवान की सृष्टि का विधान है कि कोई भी अपने को जिसका अधिकारी बना लेता है, उसे पाने से वह वञ्चित नहीं रखा जाता।

'आत्मसाक्षात्कार या भगवत्प्राप्ति?' उत्तर तो एक ही है। यही उत्तर उसे भी मिलना था और मिला–'यह तो तुम्हारे अधिकार एवं रुचि पर निर्भर करता है कि तुम किसको चुनोगे। यदि तुम मस्तिष्कप्रधान हो तो प्रथम और हृदयप्रधान हो तो द्वितीय।'

वह राजूपत है–सच्चा राजपूत और यह समझ लेना चाहिये कि सच्चा राजपूत लगन का सच्चा होता है। वह पीछे पैर रखना नहीं जानता–किसी क्षेत्र में बढ़ने पर। सौभाग्य से पिता साधुसेवी थे और सत्सङ्ग ने उसे सिखा दिया था कि संसार के भोग तथ्यहीन हैं, उनमें सुख की खोज चावल के लिये तुस कूटने जैसा है।

'परमार्थ का मार्ग तो वह दिखला सकता है, जिसने स्वयं उसे देखा हो।' उसका निर्णय आप भ्रान्त तो नहीं कह सकते। कोई भी मार्ग वही दिखा बता सकता है, जो उस पर चला हो। सुन–सुनाकर बताने वाले भूल कर सकते हैं। किसी की भूल से जब पूरे जीवन के भटक जाने की आशंका हो, ऐसा भय कौन आमन्त्रित करे। उसने निश्चय किया–'समर्थ स्वामी रामदास के श्रीचरण ही मेरे आश्रय हो सकते हैं।'

कहाँ ढूँढ़े वह श्री समर्थ को। उन दिनों वे कहीं टिककर रहते नहीं थे। उन्होंने देश–भ्रमण प्रारम्भ कर दिया था। यह ठीक है कि वर्ष–दो–वर्ष में वे 'सातारा' आ जाते थे; किन्तु जीवन के साथ जुआ तो नहीं खेला जा सकता। जीवन वर्ष–दो वर्ष रहेगा ही–मृत्यु कल ही धर नहीं दबायेगी, इसका आश्वासन?

'स्वामी! मैं आपके समीप से उठने वाला नहीं हूँ!' उसने श्री पवनकुमार के श्रीविग्रह के चरणों के पास आसन लगाया। 'श्रीसमर्थ आपके हैं, मैं उन्हें कहाँ ढूंढने जा सकता हूँ।'

बात सच थी, संत ढूंढ़ने से मिलते होते तो देवर्षि नारद अपने भक्तिसूत्र में न कहते –

'लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव' (40)

किन्तु उन्होंने ही यह भी तो कहा है–

'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्'। (41)

श्री मारुति के चरणों में पहुँची आर्त पुकार कभी निष्फल नहीं लौटी है। इस बार भी उसे नहीं लौटना था। पता नहीं कहाँ से घूमते हुए श्री समर्थ आ पहुँचे और किसी ग्राम या नगर में पहुँचने पर वे पहले वहाँ के श्री मारुति मंदिर में प्रणाम करने पहुँचेंगे, यह तो निश्चित ही रहता है।

'मैं तुम्हें ढूंढ़ने आया हूँ।' श्री समर्थ ने पवनकुमार को साष्टाङ्ग प्रणिपात किया और अपने पदों में प्रणत उस राजपूत युवक को उठा लिया।

'कृपामय न ढूंढ़े तो अज्ञ असमर्थ जन उन्हें कहाँ कैसे प्राप्त कर सकता है।' युवक के नेत्रों से अश्रु झर रहे थे।'

'तुम इस प्रकार यहाँ क्यों बैठे हो?' समर्थ की ओजपूर्ण वाणी गूंजी। 'तुम्हारे जैसे समर्थ तरुणों की सेवा आज जनता रूप में विद्यमान श्री जनार्दन माँग रहे हैं।'

'मनुष्य–जीवन बार–बार प्राप्त नहीं होता, यह आप महापुरुष से ही सुना है।' युवक अपनी जिज्ञासा पर आ गया था। 'आप कृपा करें! यह जीवन आपकी कृपाकोर प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाएगा।'

'श्री रघुवीर समर्थ अनन्त करुणावरुणालय हैं।' समर्थ स्वामी अभय दे रहे थे। 'कृपा की क्या कृपणता है वहाँ! उनके श्रीचरणों से कृपा की अजस्र स्रोतस्विनीं त्रिभुवन को आप्लावित करती झर रही है। तुम अपने को उन श्रीचरणों में अर्पित तो कर दो।'

* * *

'मुझे आज्ञा दें प्रभु!' वह युवक अब एक आश्रम का मुख्य प्रबन्धक था। अब वह साधु है–समर्थ का साधु। समर्थ के साधु का अर्थ है–दीनों का सेवक, रोगियों का उपचारक एवं पीड़ितों का मूर्तिमान आश्वासन, किन्तु वह

स्वयं आज आर्त्त हो रहा है। श्रीसमर्थ की प्रतीक्षा कर रहा है वह गत दो महीनों से और आज जब उसके गुरुदेव पधारे हैं, वह उनके श्रीचरणों पर गिर पड़ा है।

'तुम बहुत उद्विग्न दीखते हो!' श्रीसमर्थ ने आसन स्वीकार कर लिया था।

'अपने को अयोग्य पाता हूँ मैं इस आश्रम के लिये।' वह खुलकर रो पड़ा। 'श्रीचरण आज्ञा दें तो एकान्त में कुछ दिन प्रयत्न करूं।'

'कौन-सा प्रयत्न करोगे तुम!' समर्थ स्वामी के मुख पर स्मित आया-अपार वात्सल्यपूर्ण स्मित।

'मन की चंचलता को रोकने का प्रयत्न?' युवक ने उत्तर दिया। 'श्री चरणों ने ही आदेश किया था कि नैष्कर्म्य की सिद्धि ही आत्मदर्शन का उपाय है।'

'उपाय नहीं-नैष्कर्म्यसिद्धि तथा आत्मदर्शन एक ही बात है।' श्रीसमर्थ ने संशोधन किया। 'किन्तु नैष्कर्म्य का तुम सम्पादन कैसे करोगे? कर्म का त्याग करके?'

'यदि प्रभु आज्ञा दें!' युवक ने अपना मन्तव्य स्पष्ट किया। 'आश्रम में रहकर तो नित्य कार्यव्यग्र रहना ही पड़ता है।'

'एकान्त में जाकर तुम श्वासक्रिया बन्द कर दोगे?' समर्थ समझाने के स्वर में बोल रहे थे। 'आहार एवं जल भी तथा शरीरस्थ यंत्रों की क्रियाओं को भी? यदि यह कर भी लो तो उस पत्थर में और तुममें अन्तर क्या होगा?'

'प्रभु!' युवक अपने मार्गद्रष्टा के चरणों पर गिर पड़ा। उसे लगा कि कोई घने अंधकार का पर्दा उसके सम्मुख पड़ा था और अब वह उठने ही जा रहा है।

'आत्मतत्त्व अक्रिय है। उसकी अनुभूति-समस्त क्रियाशीलता के मूल में जो एक निष्क्रिय सत्ता है, जिसमें क्रिया आरोपित मात्र है, उससे एकत्व का अनुभव।'

सहसा श्रीसमर्थ रुक गये। उन्होंने देखा कि उनका यह अनुगत इस पद्धति को हृदयंगम नहीं कर पा रहा है। उन्होंने दिशा बदली-'क्रिया के संचालक एवं उसके फल के दाता-भोक्ता श्रीरघुवीर हैं। हम-तुम सब उन समर्थ के हाथ के यंत्र हैं। हमें उनके चरणों में अपने-आपको पूर्णतया अर्पण कर देना है।'

'श्रीचरणों में मैंने अपने को उसी दिन अर्पित कर दिया।' युवक के स्वर में विश्वास था।

'यंत्र तो नित्य निष्क्रिय है। उसकी क्रिया तो संचालक की क्रिया है।' श्रीसमर्थ ने वह अज्ञान की अन्धयवनिका उठा दी। 'सचमुच तुमने अपने को अर्पित कर दिया है तो नैष्कर्म्य स्वत: प्राप्त है। मन के चाञ्चल्य के निग्रह के कर्ता बनने की इच्छा तुममें क्यों आती है?'

'यह अशान्ति-उस आनन्दघन की अनुभूति जो नहीं पा रहा हूँ।' बात सच है। यदि आन्तरिक शान्ति और आनन्द नहीं मिलता तो अवश्य हमसे भूल हो रही है, हमारे साधन में कहीं त्रुटि है।

'अपने को कर्ता मानना छोड़ दिया होता तुमने!' वह त्रुटि जो स्वयं साधक नहीं पकड़ पाता, उसका मार्ग-द्रष्टा सहज पकड़ लेता है। श्रीसमर्थ से वह त्रुटि छिपी नहीं रह सकती थी। 'कोई पीड़ित नहीं, कोई रोगी नहीं, कोई संतप्त नहीं। तुम न उद्धारक हो, न सहायक। इन रूपों में आनन्दघन श्री रघुवीर तुम्हारी सेवा लेने आते हैं तुम पर कृपा करके। उनकी सेवा करके तुम कृतार्थ होते हो।'

युवक ने भूमि पर मस्तक रखा और उसके वे गुरुदेव उठ खड़े हुए। उन्हें अब प्रस्थान करना था।

* * *

'तुम जा सकते हो, यदि तुम्हें एकान्त में जाने की आवश्यकता प्रतीत होती हो!' श्रीसमर्थ स्वामी रामदास जब दूसरी बार उस आश्रम पर लौटे, स्वागत-सत्कार समाप्त हो जाने पर अपने चरणों के पास बैठे आश्रम के प्रधान की ओर उन्होंने सस्मित देखा।

'मुझसे कोई अपराध हो गया?' प्रधान ने मस्तक रखा श्रीचरणों पर। अन्य आश्रमस्थ साधु सशङ्क हो उठे। उनके निष्पाप प्रधान ने ऐसा क्या किया कि उन्हें दण्ड प्राप्त हो? किसी अपने चरणाश्रित साधु को समर्थ स्वामी आश्रम से पृथक् होकर एकान्त-सेवन का आदेश तभी देते हैं, जब वह कोई अक्षम्य अपराध करता है। यह तो उनका सबसे बड़ा दण्ड है।

'अपराध की बात मैं नहीं कहता!' समर्थ स्वामी प्रसन्न थे। 'यह तो तुम्हारी आवश्यकता की बात है। आन्तरिक शान्ति एवं निरपेक्ष आनन्द की उपलब्धि के लिये यदि तुम्हें एकान्त की आवश्यकता प्रतीत होती हो.....।'

(शेष पृष्ठ 29 पर)

विचार-सरिता
(सप्तत्रिंशत् लहरी)

''मैं कौन हूँ'' यह जान लेना ही सत्य को जान लेना है। इसी बोध से मनुष्य के समस्त दुःखों का विसर्जन हो जाता है। दुःख आत्म-अज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं। अपने आपको देह मानना ही सबसे बड़ा पाप है और अपने आपको सत्स्वरूप परमात्मा जानना ही सबसे बड़ा पुण्य है। अपने को 'मैं' जानते ही वह साधक आनन्द का अधिकारी हो जाता है। वह जो सबसे भीतर है-वही पराशक्ति रूप ईश्वर है। उसी की अनुभूति का नाम बोधगम्य आनन्द है। ''मैं यह हूँ'' इसमें 'मैं' चिति (चेतन) का रूप है और यह (दृश्यरूप देह) जड़ तत्व है। जब 'मैं' की प्रधानता होती है तब 'चेतन स्वरूप आत्मा' और 'यह' ही प्रधानता होती है तो कार्यरूप देह का अभिमान हो जाता है।

हमारा 'मैं' पना पांच कोशों से आवृत है। कोश नाम खजाने की पेटी या तलवार का म्यान आदि है। कोश दिखता है पर उसके भीतर जो कीमती वस्तु है वह होते हुए भी दिखती नहीं है। उस कीमती धन या तलवार के कारण ही खजाने की पेटी व म्यान का महत्त्व है, कीमत है अन्यथा तो वह खाली एक खोल है जिसका कोई विशेष महत्त्व भी नहीं है। तलवार के तेगे को जैसे म्यान ने ढक रखा है ऐसे ही हमारी आत्मा को भी पांच कोशों ने ढक रखा है। इन कोशों के कारण इनके भीतर में जो कीमती तत्व है वह प्रकट नहीं हो रहा है। जैसे तलवार की धार देखनी है या उसे शस्त्र के रूप में काम में लेनी है तो उसके ऊपर जो कोश (म्यान) है, उसे हटाना पड़ेगा। तभी जो तलवार की शक्ति है वह प्रगट हो सकती है। ऐसे ही हमारे 'मैं' को जानना है तो इन पांचों कोशों को जानकर इनका अनावरण करना होगा। इनको समझने का अभिप्राय यही है कि ये जानने में आते हैं इसलिए इन पांचों कोशों में से एक भी कोश मैं नहीं, मेरे नहीं। मैं इनको जानने वाला इन पांचों कोशों से भिन्न चेतनस्वरूप आत्मा हूँ। जैसे तलवार की म्यान तलवार नहीं हो सकती ऐसे ही ये पांचों कोश आत्मा (मैं) नहीं हो सकते।

अब इन पांचों कोशों को हम ठीक-ठाक समझने का प्रयास करते हैं ताकि यह सिद्ध हो जाए कि ये पांच-कोश तो प्रकृति के कार्य हैं और 'मैं' इनका कारण रूप परमात्मा हूँ।

1. अन्नमय कोश :- माता-पिता द्वारा खाये-पीये अन्न जलादि से बने रज-वीर्य के संयोग से जो माता के गर्भाशय में उत्पन्न होता है। फिर जन्म के पश्चात् माता के दूध व अन्नादि का पान करके वृद्धि को प्राप्त करता है और फिर काल का ग्रास बनकर मरण को प्राप्त होकर पृथ्वी में लीन हो जाता है। ऐसा जो स्थूल देह है वही अन्नमय कोष है।

2. प्राणमय कोश :- पांच कर्मेंद्रियों सहित पांच प्राण ही प्राणमय कोश है। पांच कर्मेंद्रियाँ जो कही जाती हैं, वे हैं-वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ और गुदा। ये पाँच कर्मेंद्रियें क्रमशः जीभ, हाथ, पाँव, मूत्रेन्द्रिय और गुदारूप स्थानों में रहती हुई अपने-अपने विषय के प्रति कर्म करने वाली शक्तियाँ हैं। अतः इन्हें कर्मेंद्रियाँ कही जाती है। पांच प्राण-प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान नाम से जाने जानेवाले पांच प्राण हैं। उपरोक्त पांच कर्मेंद्रियाँ व पांच प्राणों के संयुक्त व्यवहार करने की शक्ति का नाम ही प्राणमय कोश है। यह सूक्ष्म देह का हिस्सा है।

3. मनोमय कोश :- पांच ज्ञानेन्द्रियों सहित मन ही मनोमय कोश है। समझने के लिए पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं वे इस प्रकार हैं-श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना (जिह्वा) और घ्राण। ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ क्रमशः कान, चमड़ी, आँख, जीभ और नाक रूप स्थानों में रहती हैं। अपने-अपने विषय क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का ज्ञान करने वाली होने से इन्हें ज्ञानेन्द्रियाँ कही गई है।

मन की परिभाषा यह है कि अन्तःकरण की वह शक्ति जो संकल्प-विकल्प रूप है। 'करूं' 'नहीं करूं'

यही इसका आकार है। देह में अहंता-ममता रूप अभिमान करने का काम भी मन का ही है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाहर निकल कर विषय का बोध करने का कारण रूप है। अत: इसे मनोमय कोश कहा गया है। मनोमय कोश भी सूक्ष्म देह का हिस्सा है।

4. विज्ञानमय कोश :- पांच ज्ञानेन्द्रियों सहित बुद्धि विज्ञानमय कोश कहलाता है। पांच ज्ञानेन्दियों का विवरण पूर्व में मनोमय कोश में आ चुका है। इनके साथ जुड़ने वाली जो बुद्धि है जिसका काम है निश्चय करना। अन्त:करण की वह वृत्ति जो निश्चय करती है कि 'यही करना है' उसी का नाम बुद्धि है। ज्ञानेन्द्रियों सहित बुद्धि ही विज्ञानमय कोश है और यह भी सूक्ष्म देह के अन्तर्गत है।

5. आनंदमय कोश :- जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है कि यह ऐसा सूक्ष्म कोश है जो आनन्दमय है। शुभकर्मफल के अनुभवकाल में कदाचित् बुद्धि की वृत्ति अन्तर्मुख होकर आत्मस्वरूपभूत आनन्द के प्रतिबिम्ब को भजती है अर्थात् अपने स्वरूप को वास्तविक आनन्द को न भजकर केवल प्रतिबिम्ब के आनन्द को अनुभव करती है। उस प्रतिबिम्ब का भोक्ता चिदाभास है। वह प्रिय, मोद और प्रमोदस्वरूप है और वही वृत्ति जब पुण्यकर्मफल के भोग की निवृत्ति हो जाने पर निद्रारूप से अपने व्यष्टि-अज्ञान में लीन हो जाती है। इसी वृत्ति को ही आनंदमयकोश कहा गया है।

अब साधक का पुरुपार्थ यह होना चाहिये कि वह इन पांचों कोशों को समझकर इन्हें अपने स्वरूप से अलग जाने और यह निश्चय करे कि मैं सत् चित् आनन्दरूप आत्मा इन कोशों को जानने वाला साक्षी रूप हूँ। सबसे पहले अन्नमयकोश को समझें कि यह कैसा है और इसका क्या कार्य है? अन्नमयकोश सुख-दुख के अनुभव के भोग का आयतन है। 'मैं' इसके सुख-दु:ख रूप कार्यो को जानने वाला इससे न्यारा हूँ। क्योंकि गर्भाधान से पूर्व और मरण के बाद अन्नमयकोश (स्थूल शरीर) का अभाव प्रत्यक्ष देखा जाता है। इसलिये यह उत्पत्ति और नाशवान होने से घट की भाँति कार्यरूप है। 'मैं' सदा भावरूप होने से उत्पत्ति-नाश रहित हूँ अत: इससे विलक्षण हूँ। इस प्रकार यह अन्नमयकोश 'मैं' नहीं और मेरा नहीं। यह स्थूल देहरूप है।

प्राणमयकोश की पांचों कर्मेद्रियाँ तो स्व-स्व विषय में संलग्न रहती हैं और पांचों प्राण (वायु) सारे शरीर में पूर्ण होकर उसको बल देते हैं और इन्द्रियों को अपने-अपने कार्य में लगाने में बल देकर क्रिया करवाते हैं। निद्रा में पुरुष सोया हुआ होवे तब भी प्राण जागता है परन्तु कोई स्नेही आवे तो उसका सत्कार करता नहीं तथा चोर आकर आभूपण ले जावे तो उसको भी रोकता नहीं। इसलिए यह प्राणमयकोश घट की भाँति जड़ है, किन्तु 'मैं' इससे विलक्षण चैतन्यरूप हूँ। इससे यह सिद्ध हुआ कि यह प्राणमयकोश 'मैं' नहीं, मेरा नहीं। यह तो सूक्ष्मदेह रूप है। इसके समस्त क्रियाकलापों को जानने वाला आत्मा 'मैं' इससे न्यारा हूँ।

इसी तरह मनोमयकोश की पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषय में संलग्न रहती हैं और मन देह में अहंता-ममता का अभिमान करता रहता है। मन का स्वभाव चांचल्यता का है और यह संकल्प-विकल्प करता रहता है। काम-क्रोधादि-वृत्तियुक्त होने से मनोमयकोश रूपी मन विकारी है तथा 'मैं' सर्ववृत्तियों का साक्षी होने से अविकारी है। इससे यह सिद्ध हुआ कि यह मनोमयकोश मैं नहीं, मेरा नहीं। यह सूक्ष्मदेह रूप है। इसके समस्त व्यापारों को जानने वाला मैं आत्मदेव इससे न्यारा हूँ।

विज्ञानमयकोश की पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषय में लगी रहती हैं और बुद्धि ऐसा करने में साथ देती है। यह चिदाभास युक्त बुद्धि सुपुप्ति में विलीन होती है और जाग्रत में नख के अग्रभाग से लेकर शिखापर्यन्त शरीर में व्याप्त रहती है और कर्तापने का अभिमान करती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि विज्ञानमय-कोशरूपी बुद्धि, घट-पट आदि की भाँति विलय-विकृति आदि अवस्था वाली होने से विनाशी है और 'मैं' विलय-विकृति आदि अवस्था से रहित और विलक्षण अविनाशी हूँ। यह विज्ञानमयकोश मैं नहीं, मेरा नहीं। यह भी सूक्ष्मदेह रूप है। इसके समस्त व्यवहार को जानने वाला अक्रिय आत्मा इससे न्यारा हूँ।

आनंदमयकोश में बुद्धि की वृत्ति कभी कभार अन्तर्मुख होकर आत्मस्वरूप आनंद के प्रतिबिम्ब का अनुभव करती है इसलिए उस इष्ट वस्तु के दर्शन की प्रिय वृत्ति जो मोद व प्रमोद होकर आत्म-स्वरूपभूत आनंद का प्रतिबिम्ब बन जाती है और बिम्ब रूप आत्मा उसका आधारमंत्र रह जाता है। आनंदमयकोश की वृत्ति का जो आनंद है वह कदाचित होने वाला व क्षणिक है। 'मैं' सर्वदा स्थित रहने से नित्य हूँ। इससे यह सिद्ध हुआ कि यह आनंदमयकोश भी मैं नहीं, मेरा नहीं। यह तो कारणदेह रूप है। इसको जानने वाला मैं सच्चिादानंद आत्मा इससे न्यारा हूँ।

बुद्धि आदि में प्रतिबिम्ब रूप से स्थित और प्रिय आदि शब्दों से कहे जाने वाले आनंदमयकोश व अन्य सभी कोशों का बिम्बरूप कारण जो आत्मा है वह सत्-चित् आनंदरूप नित्य होने से 'मैं' है जिसका कभी भी अभाव नहीं होता। उपरोक्त पाँचों कोश अनुभव में आते हैं और जिस अनुभव से ये पांचों कोश जाने जाते हैं वह अनुभवरूप चेतन आत्मा ही 'मैं' हूँ। ऐसा निश्चय करना ही साधक का लक्ष्य होना चाहिये और यही जीवन का सार है।

बैंक-भवन में सुरक्षित लॉकर-खण में मानो एक स्वर्ण-डिबिया है। उसमें एक कीमती हीरा रखा हुआ है। जिसकी प्राप्ति हेतु जैसे बैंक-भवन की जानकारी फिर उस भवन में वह कमरा जिसमें सुरक्षित लॉकर है उसकी जानकारी। उसके बाद उस खण-विशेष की जानकारी और उसको खोलने की विधि के बाद उस डिबिया का आवरण हटाने से ही वह कीमती हीरा पाया जा सकता है। ऐसे ही स्व-आत्मा (मैं) को पञ्चकोशों से भिन्न जानकर ही स्व-स्वरूप में स्थिति की जा सकती है। अत: जिज्ञासु साधक को अति-लग्न-पूर्वक अपने पञ्चकोशातीत स्वरूप का अनुभव कर अपने ब्रह्माभिन्न स्वरूप आत्मा में स्थिति को दृढ़ करना चाहिये। इसी में उसका परम कल्याण है। इस प्रकार उपरोक्त रीति से पांचों कोश की ठीक-ठाक जानकारी करते हुए अपनी वृत्ति को जिसने स्व-स्वरूप में प्रगाढ़ स्थिति पा ली है ऐसे नित्य मुक्त ब्रह्मस्वरूप महाजनों के चरणों में मेरा प्रीतिपूर्वक बार-बार प्रणाम।

ॐ शान्ति! ॐ शान्ति!! ॐ शान्ति!!!

पृष्ठ 26 का शेष **मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि**

'श्रीचरणों को छोड़कर मेरी और कोई आवश्यकता कभी न बने!' आश्रम के प्रधान का स्वर भाव-विह्वल हुआ। 'अज्ञानी आश्रित से त्रुटि होती ही है और दया-धाम शरण्य उसे क्षमा करते हैं। सेवक को सेवा का प्रभु ने सौभाग्य दे रखा है, उसे आनन्द का अभाव कैसे हो सक्ता है।'

'यही कहने इस बार मैं आया हूँ।' समर्थ रामदास स्वामी ने एक दृष्टि समस्त शिष्य वर्ग पर डाली। 'जो इस विश्व का निर्माता, संचालक एवं संरक्षक है, वह न दुर्बल है न असमर्थ। उसे हमारी सेवा की आवश्यकता नहीं है। यह झूठा अहंकार है कि हम किसी की सेवा करेंगे या हम लोकोपकार करेंगे।'

'तब हमारा यह आश्रम.......।' एक नवीन साधु कुछ कहना चाहता था; किन्तु स्वयं उसे अपनी भूल ज्ञात हो गयी। समर्थ स्वामी बोलते जा रहे थे-

'उन प्रभु ने हमें अपनी सेवा प्रदान की, यह उनकी कृपा। प्रत्येक जीव पर उनकी यह अहैतुकी कृपा है। सबको उन्होंने एक कार्य देकर यहाँ भेजा है और यदि अपने कार्य का वह ठीक सम्पादन करता है तो सर्वेश की आराधना करता है। इसी आराधना से वह उनकी प्राप्ति करता है।'

हमारा कर्तव्य :

'अवश्य प्रत्येक को इसे समझने में कठिनाई होती है।' समर्थ की अमृतवाणी प्रवाहित होती रही। 'किन्तु तुम्हें क्यों कठिनाई होनी चाहिये? तुममें बल है, शौर्य है, शस्त्रचालन की निपुणता है। ये साधन तुम्हें समर्थ श्री रघुवीर ने दिये हैं। आसपास जो आर्त, अत्याचार-पीड़ित है, उनकी पुकार-वह प्रभु की पुकार तुम्हारा कर्तव्य-निर्देश करती है।'

'कर्म करने के तुम्हें साधन मिले हैं-अत: उनका उपयोग करो।' उपदेश का उपसंहार हुआ। 'कर्म का त्याग अर्थात् अकर्म में आसक्ति करके तो तुम अपने को उस सर्वात्मा की सेवा से वंचित कर लोगे।'

हम भाग्यशालियों में श्रेष्ठ

– अजीतसिंह कुणघेर

परमेश्वर निर्मित इस जगत में शास्त्रों के अनुसार, धर्मग्रन्थों के मत से, सभी अवतारों के उपदेशों से तथा सभी संतों के मत से चौरासी लाख योनियों में मानव योनि ही श्रेष्ठ कही गई है। वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद) के अनुसार–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृतः।
उरुतदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रोऽजायत।।

चारों वर्णो के दायित्व को मानव शरीर के विभिन्न अंगों के दायित्वों के माध्यम से समझाया गया है। दायित्व भिन्न हैं पर एक ही शरीर के अभिन्न अंग हैं। मनुस्मृति ने आदर्श समाज व्यवस्था में क्षत्रियों के दायित्व को श्रेष्ठ बताया है–

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नरा श्रेष्ठा, नरेषु क्षत्रिया स्मृता।।

मनुष्य को सर्वाधिक प्रिय उसका शरीर लगता है। वह उसकी रक्षा और देखभाल में पूरी सावधानी बरतता है। पर क्षत्रिय इस सर्वाधिक प्रिय लगने वाले शरीर की, जीवन की भी परवाह नहीं करता है। इसीलिए शायद उसे श्रेष्ठ माना गया है।

विश्व का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र भारत को माना गया है। मनुष्य इसी देश में जन्म लेने की कामना करता है। भारत में भी इच्छानुसार कुल चुनते हैं तो वह कुल क्षत्रिय है। क्षत्रिय कुल में भी यदि हम क्षत्रिय युवक संघ से नाता जोड़ लेते हैं तो हम भाग्यशालियों में श्रेष्ठ हैं। क्योंकि संघ हमें क्षत्रियों के गुणों से ओतप्रोत करने के लिये अभ्यास करवाता है और इस प्रकार श्रेष्ठ कुल के अनुरूप मानव की रचना करता है।

जैन धर्म के सभी चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय ही हुए हैं। उनके वर्तमान मुनि जन भी मानते हैं कि यदि पच्चीसवां तीर्थंकर होगा, तो वह भी क्षत्रिय कुल से ही होगा। बौद्धधर्म के प्रणेता भगवान बुद्ध भी क्षत्रिय के घर से ही थे। वीरों और वीरांगनाओं ने तो अपने शौर्य और बलिदानों की कथाओं से भारत का स्वर्णिम इतिहास रच डाला है।

संघ की प्रार्थना के शब्दों को याद करें तो हमने हमारी इच्छा से क्षत्रिय कुल में जन्म नहीं लिया है, प्रभु ने ही हमको यहाँ जन्म दिया है–

क्षत्रिय कुल में प्रभु जन्म दिया तो,
क्षत्रिय के हित में जीवन बिताऊँ।

ऐसे उच्च स्तर के कुल में प्रभु ने जन्म हमें दिया है, तो हमारा दायित्व बनता है कि हमारे पूर्वजों की तरह त्याग और बलिदान युक्त जीवन जी कर, अमृत तत्व की रक्षा और विष तत्व के दमन में तत्परता से लगे रहकर इस कुल का हित सम्पादन करें। अब भी यदि मैं नहीं उठा, नहीं जागा, अपने आपको टटोलकर अपने जीवन को क्षत्रियोचित नहीं बनाया तो व्यर्थ ही यह जीवन बीत जाएगा। जो भाग्य परमात्मा ने हमें दिया है, वह निरुपयोगी ही रह जाएगा। अतः संघ कार्य में संलग्न रहकर मुझे अपने भाग्य का सदुपयोग करना है, हमारा चिंतन और प्रयत्न इसी दिशा में रहे। संघ हमारा आह्वान करता है कि कब तक तुम अपने आपको कमजोर समझते रहोगे? तुम तो शेर की संतान हो, अपने रूप को पहचान कर उसी के अनुरूप कर्मरत बनो।

22 दिसम्बर, 1946 का दिन हमारे समाज के लिये स्वर्णिम प्रभात लेकर आया है जब श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना हुई। हमारे जीवन को श्रेष्ठ बनाकर मानवता के कल्याण हेतु तत्पर रहने की प्रेरणा संघ दे रहा है। हम कोई भेड़-बकरी नहीं, ऐरा-गैरा नहीं, अपने दायित्व को भूले हुए लोग हैं। उस दायित्व को याद दिलाकर, उसी पथ पर चलने के लिये हमारे हर कर्म में जाग्रति और सावधानी बरतने की शिक्षा हम संघ से पाते हैं।

पू. तनसिंहजी ने हमें हमारी वांछित क्षत्रियोचित राह पर चलने के लिये हमें शाखा और शिविर को

(शेष पृष्ठ 34 पर)

अपनी बात

संयम यदि सध जाए तो युक्ति पूर्वक संयमित आहार लेना संभव हो जाता है। यहाँ आहार शब्द बड़ा व्यापक है। उसका अर्थ सिर्फ भोजन नहीं है। आहार का अर्थ है जो भी हम भीतर लेते हैं। कोई आये और इधर-उधर की गपशप करने लगे तो जो संयमी है, वह कहेगा-भाई यह आहार मुझे मत करवाओ। मेरे कान में यह व्यर्थ की गपशप मत डालो। क्या प्रयोजन है? क्योंकि मुझे इसमें कुछ रस नहीं है। यह भोजन है कान का। युक्तिपूर्वक आहार करने वाला व्यक्ति कूड़ा-करकट नहीं पढेगा। वह व्यर्थ की चीजें नहीं पढेगा, क्योंकि वह भी आहार है। वह व्यर्थ के दृश्य भी नहीं देखेगा, टेलीविजन पर बैठकर मारकाट नहीं देखता रहेगा, फिल्म में बार-बार घिसी-पिटी कहानियाँ देखने नहीं जाता रहेगा। यह आँखों का आहार है, इस कचरे को वह भीतर नहीं ले जाएगा। क्योंकि जो कुछ हम भीतर डालते हैं, उसी से हम निर्मित होते हैं।

युक्तिपूर्वक आहार लेने वाला व्यक्ति मूर्छा छोड़ने लगेगा। निद्रा छोड़ने का अर्थ यह नहीं कि वह सोयेगा ही नहीं। वह सोयेगा, लेकिन अब निद्रित नहीं सोयेगा। फिर निद्रित जागेगा भी नहीं। अधिकतर लोग जागे हुए भी सोये हुए रहते हैं। चले जा रहे हैं रास्ते पर, अनेक विचार चल रहे हैं, वहीं उलझे रहते हैं। अगर कोई अचानक पूछ बैठे कि इस मार्ग पर जो पेड़ था, उस पर फूल खिले हैं या नहीं? तो कहेंगे कि देखा ही नहीं। रोज उसी रास्ते से निकलते हैं लेकिन देखा ही नहीं कि फूल खिले या नहीं। देखते कैसे, विचारों में जो उलझे रहते हैं। अपने विचारों में दबे चल रहे हैं, सोए चल रहे हैं। यही निद्रा है। जैसे-जैसे निर्विचार हो जाएंगे, वैसे-वैसे जागरण आयेगा। यह जागरण प्राप्त होने पर यह जगत बड़ा सुन्दर लगेगा। आँख से विचारों की धूल हट गई तो अब जगत का प्रतिबिम्बि ठीक-ठाक बनने लगता है। विचारों की तरंगें भीतर शान्त हो गई तो झील शान्त हो गई। शान्त झील पर पूरा चन्द्रमा उतर आता है। जगत अपूर्व रंगों से भर जाता है। लेकिन जब तक यह चित्त की धूल है, तब तक जगत बासी-बासी लगता है। ऐसा लगता है सब वही का वही तो है।

लेकिन हम नींद में ही हैं। रोज सब नया हो रहा है। जो सूरज हमने कल विदा किया था, आज सूरज ठीक वैसा ही विदा नहीं होगा। आज की साँझ कुछ नए रंग खिलाएगी। आज आकाश में नये बादल होंगे, नए रंग होंगे। आज के सूर्यास्त की आभा कुछ और होगी। आज का सूर्योदय भी कुछ और था। प्रतिपल सब बदल रहा है। यही तो जीवन का अर्थ है। मुर्दा नहीं है अस्तित्व। अस्तित्व जीवंत प्रवाह है। हम नया शिविर करते हैं तो, इस शिविर में पिछले शिविर से नया रंग होगा। पर यह अनुभव में तभी आएगा जब हम जाग्रत रहेंगे। यदि हम नींद में पड़े रहेंगे तो पता ही नहीं चलेगा। तब तो हमारा जागरण भी निद्रा है।

एक ऐसी घड़ी आती है होश की, जब नींद भी होती है, शरीर सोया हुआ रहता है लेकिन भीतर एक छोटा-सा दीया होश का जलता रहता है। जैसे एक माँ का छोटा बच्चा सो रहा है। मेघ गर्जना कर रहे हैं, बिजली कौंध रही है, माँ को सुनाई नहीं पड़ता। लेकिन बच्चा जरा सा कुनमुन करे और सो रही माँ को सुनाई पड़ जाता है। मामला क्या है? आकाश में घोर गर्जन हो रहा है, बिजली कड़क रही है, लेकिन माँ को कुछ पता नहीं, वह गहरी नींद में खर्राटे भर रही है। पर बच्चा जरा कुनमुनाता है, तत्क्षण जग जाती है। उसके भीतर कोई जागा हुआ है। थोड़ा-सा हिस्सा, जो राह देख रहा है कि बच्चे को कहीं कोई अड़चन न हो जाय। उसका मातृत्व जागा हुआ है।

सब मिलकर एक जगह सो रहे हैं, कोई आए और पुकारे राम, तो बाकी किसी को सुनाई नहीं पड़ेगा लेकिन जिस व्यक्ति का नाम राम है, वह बोल उठेगा-भाई क्यों सताते हो सोने दो न। कान में सबके पड़ा है राम, लेकिन सब को पता है, नींद में भी पता है, इतना

पता है कि यह मेरा नाम नहीं है, यह किसी और के लिये पुकार है। सुबह कोई पूछे तो वे बता भी नहीं सकेंगे कि कुछ आवाज दी गई थी, पर राम को सुनाई पड़ गया।

हमारे सामान्य जीवन में भी हमें इस बात का ख्याल रहता है, कभी-कभी, किन्हीं क्षणों में कुछ चीजें हमारे भीतर भी जगी रहती हैं। विद्यार्थी परीक्षा के दिनों में रात में भी पाता है कि थोड़ा-सा जागरण बना हुआ है, कई बार आँख खोलकर देख लेता है कि घड़ी में कितना बजा है, सुबह तो नहीं हो गई। ऐसे छोटे-छोटे अनुभव होते हैं। योगी के भीतर, साधक के भीतर सतत् एक दीया जलता रहता है। इसीलिए गीता में कहा है कि जो सबके लिये गहरी रात है, वह भी संयमी के लिये जागरण है। हम भी साधक हैं। सोते, उठते, बैठते, खाते, खेलते, अपना कार्य सम्पादन करते सदैव यह दीया जलता रहे कि मैं क्षत्रिय युवक संघ की साधना का साधक हूँ। संघ का कभी विस्मरण हो ही नहीं। गीता के संयमी बनें। यही हमारे जीवन का अर्थ है। यह जीवन्तता हर क्षण बनी रहे।

पृष्ठ 13 का शेष

प्रेरक कथानक

रहा था। लौटा, बोला,-''देखो! नदी में इतना वेग नहीं है जितना तुम समझती हो। केवल घुटने तक पानी है। तुम चलो तो।'' नववधू बोली,-''महाराज! हमको बहुत डर लगता है।'' ब्रह्मचारी बोला,-''अच्छा, यह डण्डा पकड़! हम पार करा देंगे।'' जहाँ पानी के पास आयी, वहाँ छड़ी छोड़कर वधू बड़ी जोर से चीख पड़ी, वापस हो गयी और पुन: जाकर वहीं बैठ गयी। विकल होकर रोने लगी। ब्रह्मचारी अवाक् रह गया, बोला,-''अब क्या हुआ?'' रोती हुई बोली,-''महाराज! मेरे अभाग्य का अन्त नहीं है। अब तो कोई उपाय नहीं है। हमारे पास सौ-सवा सौ रुपया है। यहाँ मुझे शेर-चीता तो खा ही जायेंगे, ये पैसे पड़े-पड़े सड़ जायेंगे, आप तीरथ-बरत में जा रहे हैं, इसे स्वीकार करें। किराया-भाड़ा, गाँजा-भाँग में काम आ जायेंगे।'' रुपया फेंका, प्रणाम किया और वापस वहीं जाकर रोने लगी। महात्मा दयार्द्र हो चले थे, पूछा,-''बात क्या हुई। क्यों पीछे हट गयी?'' वह बोली, ''महाराजजी! पैर में महावर लगा है, वह तो पानी में धुल जायेगा। ससुराल में वे मुझे रखेंगे नहीं। कहेंगे, न जाने कितने दिन की चली है। महावर कहाँ छुड़ाकर आयी है।''

महात्मा ने सोचा, विपत्ति तो भारी है; किन्तु बेचारी है बड़ी धर्मात्मा। पूछा,-''क्या कोई भी उपाय नहीं है?'' ''महाराज! आप जायँ।'' ब्रह्मचारी ने कहा,-''सुन तो लें, क्या है?'' वधू बोली,-''अपने कन्धे पर बैठा लीजिए, हमारे पैर का रंग न छूटे और उस पार कर दीजिए।'' ब्रह्मचारी बोला,-''ऐसा कैसे हो सकता है?'' वह बोली,-''अरे महाराज! वह तो हमने पहले ही प्रार्थना किया। आप जाइये।''

ब्रह्मचारी संकोच में पड़ गया, सोचा- है बड़ी दयालु, साधुसेवी है। हमको इतना खर्च दिया। रास्ते की ओर आगे-पीछे देखा। कोई नहीं था। बोला,-''शीघ्र कंधे पर बैठ। हम पार कर दें।'' ब्रह्मचारी के मन में उस समय कोई विकार भी न था। कन्धे पर बिठाया और नदी पार करने लगा। बीच धारा में पहुँचते ही नववधू ने ब्रह्मचारी के मुँह पर लगाम लगाकर पैर से एड़ लगा दिया। टिक-टिक हाँकने लगी। ब्रह्मचारी बिगड़ा,-''बदतमीज कहीं की! क्या करती है?'' ऊपर झाँका तो वही बुढ़िया। बोली,-''कहा था न बाबा बचना! द्रवित हो ही गये। साधक के लिये दया का विधान कहाँ है। थोड़ा-सा चारा फेंका, उतने में ही फँस गये। तुम्हारे पीछे पुण्य प्रबल है। जंगल वाले महात्मा हृदय में बैठे हैं इसलिए बच गये अन्यथा तुम्हें तो अभी पटककर चढ़ बैठती। जन्मभर रोने को आँसू न मिलते।''

ब्रह्मचारी ने झुंझलाकर बुढ़िया को नदी में फेंका तो न कहीं बुढ़िया थी, न लड़की। सोचने लगा कि सचमुच माया प्रबल होती है। इसको तो हम पहचान ही नहीं सकेंगे। लौटा और आश्रम चला गया। महाराज ने पूछा,-''वैराग्य कर आये?'' ब्रह्मचारी बोला,-''महाराज! आपकी आज्ञा नहीं मानी! बाल-बाल बच गये। माया मिली थी, कहा-गुरुजी तुम्हें पकड़े हैं नहीं तो अभी पटककर चढ़ बैठती। अब तो महाराज हम यहीं रहकर सेवा करेंगे।''

- : शिविर सूचना :-

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं-

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि
01.	प्रा.प्र.शि.	1.11.2018 से 4.11.2018	भगतपुरा (सीकर)
02.	प्रा.प्र.शि.	1.11.2018 से 3.11.2018	नगेवैर कल्याण शक्तिधाम, हीरापुर, गुजरात नर्सरी के सामने, अहमदाबाद
03.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	2.11.2018 से 4.11.2018	वालोदर-मेहसाणा के नजदीक स्थित।
04.	प्रा.प्र.शि.	2.11.2018 से 4.11.2018	समौगाँव, तह. सिद्धपुर (मेहसाणा)
05.	प्रा.प्र.शि.	2.11.2018 से 5.11.2018	भांवता (कुचामन)-कुचामन से पर्याप्त साधन। सम्पर्क- श्री विजेन्द्रसिंह भांवता सरपंच-9828223145 श्री भंवरसिंह भांवता-9783233585
06.	प्रा.प्र.शि.	2.11.2018 से 5.11.2018	चारणवाला-बज्जू, बाप, नाचना से बसें उपलब्ध।
07.	प्रा.प्र.शि.	3.11.2018 से 6.11.2018	घंटियाल बड़ी (बीदासर) बीदासर एवं सुजानगढ से बसें उपलब्ध।
08.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	3.11.2018 से 6.11.2018	सोनू-जैसलमेर, रामगढ से सोनू की बसें। सम्पर्क- श्री पदमसिंह रामगढ-9001071485
09.	मा.प्र.शि.	10.11.2018 से 16.11.2018	वालूकड़ा, हाई स्कूल। भावनगर से 12 कि.मी. दूर वालूकड़ा।
10.	मा.प्र.शि. (बालिका)	12.11.2018 से 18.11.2018	नारोली-स्कूल में। थराद से बस सेवा है।
11.	प्रा.प्र.शि.	16.11.2018 से 18.11.2018	कनीज-तह. अहमदाबाद। जसोदानगर, नडियाद रोड़ (खेड़ा)
12.	प्रा.प्र.शि.	18.11.2018 से 21.11.2018	डिगाड़ी (जोधपुर)-तिंवरी से बसें।
13.	मा.प्र.शि.	18.11.2018 से 23.11.2018	घाटमपुर (उ.प्र.) रेल द्वारा कानपुर, वहाँ से बस।
14.	प्रा.प्र.शि.	20.11.2018 से 23.11.2018	विठलेसवन चौपासनी (जोधपुर)
15.	प्रा.प्र.शि.	22.11.2018 से 25.11.2018	बुड़किया। देचू से टैक्सी।

16.	प्रा.प्र.शि.	22.11.2018 से 25.11.2018	नैणिया (परबतसर)। परबतसर से पर्याप्त साधन। सम्पर्क- श्री बजरंगसिंह नैणियाँ
17.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	27.11.2018 से 30.11.2018	बीकानेर-सुभाष पेट्रोल पम्प के पीछे, जयपुर रोड़ पर स्थित नारायण-निकेतन
18.	प्रा.प्र.शि.	1.12.2018 से 3.12.2018	चारड़ा-धानेरा से बस उपलब्ध है।
19.	मा.प्र.शि.	23.12.218 से 29.12.2018	देगराय (जैसलमेर)-देवीकोट, मूलाना, भैंसड़ा, साकड़ा से बस उपलब्ध है।
20.	मा.प्र.शि.	23.12.2018 से 29.12.2018	फोगेरा (शिव) बाड़मेर से हरसाणी मार्ग पर फोगेरा, शिव से भी फोगेरा के लिये बस उपलब्ध है।
21.	मा.प्र.शि.	23.12.2018 से 29.12.2018	जालोर शहर। सम्पर्क- गणपतसिंह भंवरानी-9828136005
22.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	25.12.2018 से 28.12.2018	वीर दुर्गादास राजपूत छात्रावास, बालोतरा-कृषि मंडी के सामने।
23.	प्रा.प्र.शि.	25.12.2018 से 28.12.2018	कचनारा (मंदसौर) मध्यप्रदेश।
24.	मा.प्र.शि.	25.12.2018 से 31.12.2018	हाडलां (बीकानेर) कोलायत व बीकानेर से साधन।
25.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	26.12.2018 से 29.12.2018	जयमलकोट पुष्कर।
26.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	28.12.2018 से 31.12.2018	मंदसौर (म.प्र.)

✲ गणवेश व आवश्यक साहित्य लेकर आवें।

राजेन्द्रसिंह बोबासर

शिविर कार्यालय प्रमुख (श्री क्षत्रिय युवक संघ)

पृष्ठ 30 का शेष **हम भाग्यशालियों...**

साधन रूप में प्रदान किया है। इन साधनों पर चलकर हमारा समाज इस संसार सागर में अपनी नाव सुरक्षित रूप से चला सकता है। हमारी जितनी गति शाखा और शिविरों में होगी हम क्षत्रिय रूप में उतने ही समृद्ध और शक्तियुक्त बन पाएंगे। हमारी इस विरासत का सदुपयोग हमें करना है, जो पूज्य श्री ने हमें दी है।

मैं व्यापारी हूँ, किसान हूँ, सैनिक हूँ, अधिकारी हूँ, जहाँ कहीं भी मैं हूँ, वहाँ मुझे श्रेष्ठ बनकर रहना है। ऐसा मेरा जीवन व्यवहार होना चाहिए। इस प्रकार के हमारे समाज का निर्माण करने के लिये मेरा दायित्व बनता है कि मैं संघ कार्य को ही प्राथमिकता दूँ, क्योंकि मैं संघ का स्वयंसेवक हूँ। संघ ने मुझे प्रेरणा दी है, उसका लाभ समाज को मिले, यह मेरा कर्तव्य बनता है। गीता को आधार बनाकर सद्मार्ग पू. तनसिंहजी ने हमें दिखाया है, यह ईश्वरीय कार्य ही है, इसलिए इसमें संलग्न रहकर जीवन को सार्थक बनाऊँ।

श्री गणेशाय नमः

Dilip Singh Chundawat

Senior Optician

8058756519, 9602055727

RAJHANS OPTICAL

A Quality Optical & Eye Care Shop

Spectacle | Sunglasses | Contact Lens

Ray-Ban VOGUE eyewear ZEISS VARILUX Natural Vision. Forever.

Crizal Transitions IDEE EYEWEAR fastrack Velocity STEPPER

Eye Check by Computer Bausch & Lomb

38, Durga Nursery Road, Ashok Nagar

Opp. Sukhadia Memorial, Udaipur (Raj.)

E-mail : dilipschundawat@gmail.com

दीपावली की हार्दिक शुभकामनाएं

विरेन्द्र सिंह तलावदा

Contractor

(M) 94143-96530

जीने के बहाने मुझे आये नहीं,
रंग बिरंगे रंग मुझे भाये नहीं।
तेरे ही रंग में जीने के ढंग हैं,
प्राणों में प्राण को जोड़दे।।

दीपावली की हार्दिक शुभकामनाएं

रघुनन्दन सिंह कानावत

(एडवोकेट)

जिला महामंत्री

मेवाड़ क्षत्रिय महासभा,

भीलवाड़ा

मो. 8764055555

दीपावली की हार्दिक शुभकामनाएं

प्रेमसिंह रणधा

त्याग तपस्या की पूजा ले,
प्रेममयी कुछ मादकता ले।
एक दीप से जले दूसरा,
वह त्यौहार मनाएं।।

SUMECO
Group of Companies

Dalveersingh H. Chouhan
Chairman & Managing Director
Mob. 9823046704

SUMECO
• CNC Fabrication • Powder Coating • Anodising

Head Office : W- 231 'S' Block, E, MIDC, Bhosari, Pune 26
Email sumecogroup@gmail.com
Website : www.sumecogroup.com
Ph.:27130023 / 24 / 25 /26

Durga Metal Arts
Anodising, Hard Anodising, Chromodising

J-401, J-Block MIDC,Bhosari,Pune 411026
Email- Sales @durgametalarts.in
Website - www.durgametalarts.in
Ph.:- 020 27130011

"over the decade we have established quality of our anodising & Powder cating.
Now with our new veuture we are proud to offer solution in sheet metal fabrication"

All Group of Unit

Durga Metal Arts | Sumeco Metal Powder coating | Sumeco Metal Pressing Pvt. Ltd | Alukon Fabricators Pvt. Ltd.

Devisingh Rajput (Rajawat)
+91 9371031339

SHIVAM MARBLE & GRANITE
Dealer : All kind of Marble, Granite, Italiyan Marble & Tiles
S. No. 10/2/1, Tukaram Nagar, Ganpati Hsg. Soc., Behind M.L.A. Bapu Saheb Pathare Banglow, Opp. Reliance Mart, Kharadi, Pune-14
Email : shivammarble.granite@gmail.com

FLOORING MASTER
Email : flooringmasterpune@gmail.com

Devising Rajput & Company
(All Kind of Civil Contractor)
Add. : House No. 337, Sr. No. 48/3, Ganesh Nagar, Wadgaon Sheri, Pune 411 014
Ph. : 9371031339
Email : devisinghrajput1002@gmail.com
rajput_devisingh@rediffmail.com

M/s. D.S. Motors
Near Masalpur Chungi, Hindaun Road, Karauli 322241
Mob. : 8875787111, 8875787444
Email : dsmotors.karauli@gmail.com

नवम्बर, सन् 2018
वर्ष : 55, अंक : 11

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह